सस्ता राष्ट्रीय साहित्य की प्रथम पुस्तक।

जवाहरलाल नेहरू

के

[जीवन की एक झलक]

लेखकः—

शिवनारायण टण्डन

प्रकाशकः—

प्यारेलाल अग्रवाल

राष्ट्र सेवक संघ,

७८/४३ आज़ाद भवन, लाटूश रोड, कानपुर।

प्रथमवार
५०००

बसन्त पञ्चमी १९[illegible]

समर्पण

भारतमाता की उन सन्तानों को जो पूर्ण आज़ादी की महान् लड़ाई में सतत रूप से भाग ले रहे हैं; उन शोषित वर्गों को जो शोषणकारियों के खूनी पन्जे से निकलने के लिए आकुल व्याकुल हैं; उन दलितों और पीड़ितों को जो तमाम कष्टों और विघ्न-बाधाओं को पार करते हुए अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो रहे हैं, और शहंशाह जनता के उन समस्त भाई बहिनों को जो लेखकों की मुश्किल भाषा और प्रकाशकों के बेढब मूल्य के कारण पुस्तकों के पठन-पाठन ज्ञानवर्धन से बहुधा महरूम रहते हैं।

शिवनारायण टण्डन।

प्यारे पाठक !

पंडित जवाहरलाल नेहरू खराद पर चढ़े हुये उस हीरे के मानिन्द हैं जो हजार द्वार से, रोयें रोयें से, अपनी दमक व उजेला इस धरती पर फैलाया करते हैं।

उनकी जीवनी लिखने से यह मतलब है कि उनकी रोशनी भूले भटके लोगों को ज़िन्दगी का सच्चा रास्ता दिखलाये। हमारे तुम्हारे दिलों में एक कुहासा छाया हुआ है जिसे राम करे, यह जीवनी दूर करे।

देश के हजारों लाखों नवजवानों के मनों में यदि यह क़लम जवाहरलाल की 'ज्योति' को नहीं पैठा सकती तो इसको ज़रिया बनाना अकारथ है।

* * *

जवाहरलाल की जीवनी को महज पढ़ने के लिए कोई मत पढ़े—यह कोई जासूसी उपन्यास या कथा कहानी नहीं है बल्कि पढ़े इसलिए कि उनके अनोखे त्याग, अपूर्व देश-प्रेम, काम करने की ताक़त और पूर्ण आज़ादी के तईं उनके मनमें जो लौ लगी है उससे हमें तुम्हें सब को सबक़ लेना है।

जवाहरलाल का और हमारा खून एक है। उनसे हमारा भाई चारे का नाता है। भारत माता की जिस हवा, मिट्टी और जल से उनका शरीर पला है उसी से हमारा तुम्हारा तन भी पोषित हुआ है। वे न तो महा[illegible]—वे हम
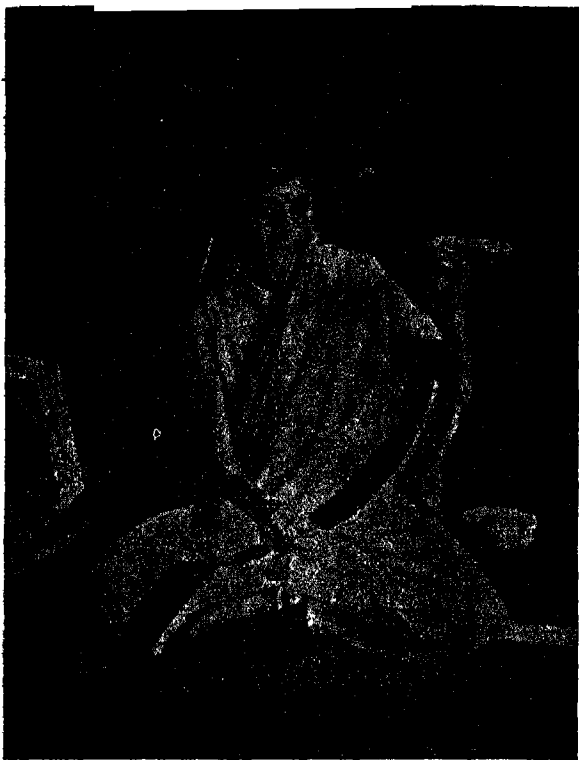
में से एक हैं और इसीलिए हमारा ख़याल है कि हम उनके क़दम पर क़दम रखकर चल सकते हैं। ऐशो आराम की ज़िन्दगी को छोड़ जिस तरह उन्होंने वतन की ख़िदमत के लिए क़दम आगे को बढ़ाया है उसी तरह हम भी, उनकी मिसाल को सामने रख कर देश-सेवा-पथ के पथिक बन सकते हैं।

* * *

आज हम जवाहरलाल की जिन्दगी की रोशनी को इन पन्नों में उतारने का अभ्यास कर रहे हैं। ईश्वर करे कल हम उनकी ज्योति को अपने जीवन ही में उतारने का प्रयास करें। पता नहीं कामयाबी हासिल होगी या नहीं। जिन्दगी थोड़ी सी है और मंज़िल बड़ी दूर है पर दुनियां उम्मीदों पर क़ायम है। अभ्यास, असम्भव को सम्भव कर देता है-श्रद्धा पत्थर में से पानी निकाल लेती है। इस लिए आओ, आज ही से अभ्यास करना शुरू करें। देश को अनेक जवाहरलालों की ज़रूरत है। प्यारे पाठक, तुम अभ्यास करते करते इतने योग्य बन जाओ कि एक दिन जवाहरलाल के क़दमों के बहुत नजदीक़ पहुँच जाओ। घर बार, स्त्री पुत्र, और धन्धा रोजगार जिससे आज तुम चिपटे हुए हो, छोड कर तुम्हें मुल्क की खिदमत के लिए जल्दी ही आगे बढ़ना है। उसकी तैयारी आज ही से शुरू करदो। इस पुस्तक को पढ़ने से यदि तुम्हारे मन मे इन भावों का उदय होता है तो लेखक अपना अहोभाग्य मानता है और यह सोच सोच कर मगन होता है कि हमारे राष्ट्रीय महासंग्राम में शीघ्र ही पूर्णाहुति पड़ने वाली है।

काहूकोठी
कानपुर

विनीत —

शिवनारायण टण्डन

प्रकाशक का वक्तव्य।

बहुत दिनों से हमारी इच्छा थी कि हिन्दी में, सरल और सस्ते राष्ट्रीय साहित्य का प्रकाशन जारी किया जाय। जिससे साधारण ग़रीब जनता अधिकाधिक लाभ उठा सके। पंडित जवाहरलाल नेहरू की यह जीवनी उसी प्रयास का पहला फल है।

* * *

मातृभाषा हिन्दी अब राष्ट्र भाषा के गौरवमय पद पर आसीन हो रही है। जहां वह इने गिने साहित्यकों की ऊँची ऊँची अटारियों पर फलती और फूलती थी वहां अब वह करोड़ों किसानों मज़दूरों और दरिद्रनारायणों की झोपड़ियों में रहती-बसती है। आज हिन्दी, क्रान्ति का, इन्क़लाब का, सन्देशा लेकर जन-समूह के बीच विचर रही है। अतएव ऐसी भाषा की ज़रूरत है जो आसानी से पढ़ी और समझी जा सके। इसीलिए यह पुस्तक बोलचाल की भाषा में पाठकों के सामने पेश की जा रही है। हम जानते हैं कि पुस्तक की भाषा अब भी कहीं कहीं मुश्किल हो गई है पर हमारी यह कोशिश है कि हम अगली किताबों में इस कमी को पूरी तरह से दूर कर दें और पूज्य गांधी जी की बतलाई हुई नीति के अनुसार सरल से सरल हिन्दुस्तानी भाषा का ही प्रयोग करें।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक से पाठक भली भाँति परिचित हैं। श्रीयुत टंडन जी ने सभी कुछ श्रद्धेय गणेश शंकर जी विद्यार्थी के चरणों मे बैठकर सीखा है। उनकी भाषा कितनी सरल, उनके भाव कितने ऊंचे, तथा उनका अध्ययन बढ़ा चढ़ा रहता है यह हममें से बहुत कम [illegible] जानते हैं। [illegible] जी पर लक्ष्मी की कृपा है, किन्तु साथ [illegible] [illegible] ने भी उन

पर कृपा करके उन्हें विनम्र तथा उदार बना दिया है। ऐसे व्यक्ति विरले ही नज़र आयेंगे जो धनवान होने के साथ ही साथ विनम्र तथा उदार हों। टण्डन जी इस प्रकार के व्यक्तियों में एक आदर्श है। हम अपने बीच मे उनको भी अपना सा ही समझ बैठते हैं, यह हम अपनी भूल कहे या टण्डन जी की सौजन्यता।

टण्डन जी ने हिन्दी में कई पुस्तकें लिखी हैं, और उनका प्रकाशन भी बड़े बड़े प्रकाशन भण्डारों ने किया है, किन्तु प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य ही और कुछ है। इसके प्रकाशन का केवल मतलब यह है कि जन साधारण केवल पुस्तक का व्यय-मात्र देकर ग़रीब देश के उन महापुरुषों की कथायें पढ़कर लाभ उठा सके जिन्होंने अपनी कुर्बानियों से देश का मस्तक ऊंचा रक्खा है।

राष्ट्र-सेवक-संघ, जिसकी ओर से हमने प्रकाशन का कार्य शुरू किया है, इस चेष्टा में है कि हर साल संघ की ओर से राष्ट्रीय-महासभा के सभापति का जीवनचरित्र प्रकाशित होवे और इसके अलावा कुछ ऐसी पुस्तकें निकलें जिनके द्वारा जनता को संगठन और चरित्रगठन का सबक़ मिले। आगे के लिए हमने कांग्रेस का इतिहास और महात्मा गांधी के अमूल्य विचार प्रकाशित करने का निश्चय किया है।

* * *

अन्त में हम लेखक को बधाई देते हैं कि जिनके अत्यन्त परिश्रम से हम आज इस पुस्तक को प्रकाशित करने में समर्थ हुये हैं।

—प्यारेलाल अग्रवाल

पहला परिच्छेद।

राष्ट्रपति

जवाहरलाल नेहरू

— परिचय —

जिस तरह फूल में ख़ुशबू है, सूरज में रोशनी है, आग में तपिश है और ज़िन्दगी में जवानी की मस्ती है, उसी तरह—वैसे ही—हिन्द की बस्ती में जवाहरलाल नेहरू की हस्ती है।

राष्ट्रपति के जयजयकार से देश का कोना कोना गूँज रहा है। जिधर वे निकल जाते हैं उधर शाहों और सुल्तानों को शर्मानेवाला उनका स्वागत होता है। भारत की जनता उनके दर्शनों के लिए पागल और व्याकुल रहती है। लाखों देश-वासियों से घिरे हुए जुलूसों में, सम्मान और अभिनन्दन क़बूल करते हुए, हाथ जोड़े, जब वे नमस्कार करते हैं, उनके पीले और कठोर मुखड़े पर मुस्कान की हल्की सी दो रेखायें दौड़ जाती हैं। कितनी आशा और कितने अरमान छिपे हैं उनकी मुस्कराहट में। जनता के बल को बढ़ते देख वे फूले नहीं समाते हैं पर दूसरे ही क्षण जब वे लोगों की भीड़ को एक दूसरे पर गिरते, धक्किमधक्का करते और चीर चीर [illegible] आगे बढ़ते देखते हैं तब वे कुछ कुछ उदास हो जाते हैं [illegible] लगते हैं कि हमारे देशवासी कितने बिखरे [illegible] हैं।

जवाहरलाल जी चाहते हैं कि लोग संगठन के असली मंत्र को समझें। अपने जीवन के हर एक पहलू से पुरानी अस्तव्यस्तता निकाल दें। नेताओं के स्वागत में सभी कोई, फ़ौजी क़ायदे से राह के दायें बायें ओर खड़े हो जाया करें और पीछे वाले घिस्से मार मार कर आगे आजाने की हरकत से बाज़ आयें। जल्सों में, मेले-तमाशों में, घर में, सभा-सोसाइटियों में और कांग्रेस के इजलासों में, सभी जगह लोग संगठन का सबक़ सीख सकते हैं। क्योंकि ये सभी जगहें राष्ट्रीय जीवन की शिक्षा देने और पाने की पब्लिक पाठशालायें हैं।

* * *

जवाहरलाल नेहरू के नाम में एक कशिश है-एक तरह का जादू है जो सर पर चढ़ कर राष्ट्रपति जवाहरलाल नेहरू की जय बुलवा लेता है। देश का युवक समुदाय उनसे प्रेम करता है प्रेमी की तरह-सगे भाई की तरह। बड़े बूढ़े आशीष पर आशीष देते हैं 'जवाहरलाल सदा ज़िन्दाबाद'। मां-बहनें उन्हें देख कर सराहती हैं और मनौती मनाती हैं कि ऐसे बच्चे हमारी कोख से भी जन्में। जनता को उनमें गहरा विश्वास है-वे जनता के प्रिय हैं-प्रियतम हैं। गुलामी के अँधेरे में, बहुधा जब हमें कुछ नहीं दिखाई देता तब जवाहरलाल 'घट में परगट' होकर हमें रोशनी देते हैं। उनकी जिन्दादिली हमारी पस्त-हिम्मती को [illegible] रही है, उनकी झलक हमारे लिए नवीन आशा का [illegible] लाती है। हमारी सोई हुई जवानी को उन्होंने [illegible] है।

आज उनकी तस्वीर ग़रीबों की झोपड़ियों से लेकर, अमीरों के महलों तक में लटक रही है। आज उनके त्याग और बलिदान की गाथा घर घर में गाई जा रही है। वे क़िस्से की तरह, एक राजा और एक रानी की कहानी की तरह, लोगों की ज़बान पर रह रहे हैं। देश के उठते हुए युवक उनकी मिसाल से साहस और बल पा रहे हैं।

* * *

उनकी विद्वत्ता और उनकी क़ाबिलियत का लोहा बड़े से बड़े लोग मानते हैं। उन्होंने दुनिया की तवारीख़ों को पढ़ा है और संसार भर की उथल पुथल का बारीकी से निरीक्षण किया है। साथ ही वे देश विदेशों में घूमे भी खूब हैं। अतएव उनका ज्ञान अब उधारू ज्ञान नहीं है बल्कि अनुभव का सुन्दर संयोग मिलने से 'सोने में सुगन्धि' आगई है। जवाहरलाल की तारीफ़ करते हुए गान्धी जी ने अपनी क़लम से लिखा है कि "देश की यह खुश-किस्मती है जो जवाहरलाल सरीखा सिपाही देश की आज़ादी की लड़ाई का सेनापति है। वह मोती सा उज्ज्वल है, शीशे सा आब्दार है, गंगा माता सा पवित्र है। देश का झंडा उसके हाथों में सदा ऊँचा रहेगा-ऐसा मेरा विश्वास है।"

* * *

कुछ लोग कहते हैं कि जवाहरलाल जी में गुस्सा बहुत है-उनका पारा जल्दी से ऊपर चढ़ जाता है। बात कुछ कुछ सही है और हमारी तुच्छ समझ से उसका यथेष्ट कारण भी है। जवाहरलालजी का क़दम किसी [illegible] का [illegible] लालसा

से देश-सेवा के मैदान में नहीं उठा है। उनके मनमें एक आग है जो अखण्ड रूप से जलती रहती है, एक व्यथा है जो हाहाकार मचाये रहती है, एक दर्द है जो पल पल टीस मारा करता है और इसी आग-इसी व्यथा-इसी टीस ने देशसेवा के कटीले, कंकरीले पथ में, सफ़र करने को उन्हें विवश किया है। घर-बार, मां-बाप, धन-दौलत और स्त्री-पुत्र सभी से मोह-ममता छोड़ जो उन्होंने मुल्क की खिदमत में मन लगाया है सो एक ही लालसा से, एक ही उद्देश्य से, एक ही नीयत से कि पराधीनता की बेड़ियों में कसी हुई, फँसी हुई, जननी जन्मभूमि को विदेशियों के चंगुल से मुक्त करना है। महाभारत की एक कथा है। कौरव और पाण्डव जब शस्त्र-विद्या में निपुण होगये तब गुरु द्रोणाचार्य ने उनकी परीक्षा करने की ठानी। एक बड़े मैदान में सभी धनुर्धारी इकट्ठा हुए। द्रोणाचार्य्य जी ने दूरके दरख़्त पर एक बनावटी पक्षी बिठलाया और कहा, सब लोग धनुष बाण सँभाल लो और उस चिड़िया के सर को काट डालो। सब से पहले युधिष्ठिर ने तीर कमान सँभाला। आचार्य ने पूछा-बेटा, निशाना पूरी तरह दीख पड़ता है न? उत्तर मिला-हां। उन्होंने फिर पूछा-बेटा, तुझे क्या क्या दीख पडता है सब ब्योरेवार बता। "चिडिया दीखती है, आप दीखते हैं, सारे भाई-बन्धु दिखलाई पड़ते हैं-जंगल के मनोहर दृश्य मेरी आंखों के सामने हैं"-युधिष्ठिर ने जवाब दिया। "तब तू लक्ष्य का भेदन न कर सकेगा" यह कहते हुए [illegible] आचार्य ने धनुष बाण युधिष्ठिर के हाथों से ले लिया। इसी तरह [illegible] आये, दुर्योधन आये, नकुल आये, और

सहदेव भी आये पर बारी बारी से मिलता जुलता उत्तर देकर सभी चले गये। अन्त में आचार्य के प्रिय शिष्य अर्जुन की बारी आई। उन्होंने कहा आचार्य देव! मुझे तो कुछ नहीं दीख पड़ता। आप भी नहीं दीख पड़ते और वृक्ष भी नहीं दिखलाई पड़ता। "तब बाण छोड़ दे बेटा"–आचार्य का इतना कहना था कि पक्षी का कटा हुआ शीश धरती पर जा गिरा। यही तो वह एकाग्रता है, यही वह धुन है जो कार्य-सिद्धि के लिए जीवनदायिनी शक्ति का काम करती है और वह अमूल्य निधि हमारे जवाहरलाल में प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। वे छोटी छोटी बातों में नहीं उलझा करते। अभी उस दिन पंडित जी कानपुर पधारे थे। तमाम कांग्रेस कार्यकर्ता, मजदूर सभा के नेता और बाज़ारों के कर्मचारियों के प्रमुख लोग उनका आदेश सुनने और अपनी तकलीफें कहने को इकट्ठा हुए थे। बातों बातों में, बात इतनी बढ़ गई कि लोग असली बात को छोड़ पार्टी-बन्दी की बातें जैसी तू तू मैं मैं में पड गये। इस पर पंडित जी बहुत क्रुद्ध हुए। उनकी भौंहे कमान के समान तन गईं, आंखें सुर्ख हो गईं, वाणी अस्फुट और तेज़ होगई–उन्होंने कहा कि तुम सब जहन्नुम में चले जाते तो बहुत अच्छा होता। इतने में कोई बोल उठा कि कानपुर में हिन्दू मुस्लिम रायट की सम्भावना है पंडित-जी; उसके लिए क्या बन्दोबस्त करना होगा? इस पर पंडित जी ने दर्द भरे स्वर में तड़पकर जो जवाब दिया वह कानों में बहुत दिनों तक गूंजता रहेगा–बोले–"इतनी इतनी अहम समस्यायें तुम लोगो के सामने है और तुम इतने ज़लील और इतने

रज़ील हो कि निरन्तर पार्टीबन्दी के दलदल में फँसे रहते हो। तुम देश सेवा का मक़सद् लेकर कांग्रेस के काम में शरीक हुए हो या अपनी अपनी ढपली बजाने के लिए? बेहतर हो कि कानपुर में एक रायट हो जाय और उसमें तुम जैसे लोग सब से पहले क़त्ल कर डाले जायँ।" उनकी ओज भरी वाणी ने सब को चौकन्ना कर दिया और पार्टीबन्दी के बड़े बड़े आचार्य जो वहां पर मौजूद थे हाथ मल-मल कर कहने लगे कि हां, हमसे बहुत भारी ग़लती होगई-इस बार मुआफ़ कीजिए-अब आगे से ऐसा नहीं होगा। उनका वह गुस्सा जितना ही सात्विक था उतना ही ज़रूरी भी था। वे नही चाहते कि देश के उठते हुए, सुनहले नव-जवान चील-चुथौवल में पडें और पद-लोलुपता, जाति-उपजाति और महत्वाकांक्षा के पीछे दीवाने बन कर अपने हीरे से जीवन को कौडियों के मोल बेच दें। जवाहरलाल चाहते हैं कि सारी छोटी मोटी बातों को भूल कर, हम तुम सब, एकबार, एक मन, एक प्राण से आज़ादी के लिए तन कर खड़े हो जायँ और जब हम ऐसा नहीं करते और फ़िजूल की नन्ही नन्हीं बातों में उल-भने लगते हैं तब वे दुखी भी होते है और रोषित भी।

* * *

जवाहरलाल जी के कतिपय विरोधी उन्हें खूं ख़्वार कहते हैं-उन पर डिक्टेटरी करने का झूठा इलज़ाम लगाते है। पर दोनों ही बातें असत्य हैं। जवाहरलाल जी फ़ैसिस्ट लोगों से चिढ़ते हैं और डिक्टेटरी के उसूलों से कोसों दूर रहते है। उनसे जो लोग मिलते हैं, उनके समीप जो लोग सौभाग्य से उठते-बैठते हैं वे

बतलाते हैं कि जवाहरलाल जी बड़े हँसमुख और बड़े विनोद-प्रिय हैं। पब्लिक प्लेटफ़ार्मों पर जहां नेता अपने असली सार्वजनिक रूप को खोल कर रखना चाहता है, जवाहरलाल जी धीमी घरेलू आवाज़ में, आपसी बातचीत के ढ़ग पर, बड़ी बड़ी बातों और समस्याओं को जनता के सामने रखते हैं। वे अपने व्याख्यानों में आदमियों के दिलों से बातें करते हैं, भावनाओं की उडान नहीं भराते। उनकी बातें सुन कर हम आनन्द, शान्ति और तसल्ली हासिल करते हैं न कि नीरसता, अशान्ति और खू ख्वारी। वे प्रजातन्त्रवाद यानी जनतन्त्रवाद के घोर क़ायल है। बहुमत के आगे अपनी व्यक्तिगत राय को झुका देने का, नेताओं के बीच, उन्हें सब से बड़ा फ़ख्र हासिल है। वे अपनी निजी राय को सदा ज़ोरों के साथ समझाने का पूरा प्रयास करते हैं, अपनी ज़ाती राय को कांग्रेस के नेताओं के सामने निहायत खुले दिल से रखते हैं पर कांग्रेस का, देश का, बहुमत जो कहता है उसके आगे वे सदैव सर झुका देते हैं। अपनी ग़लती को खुले शब्दों में तसलीम कर लेना जवाहरलाल जी का अपना गुण है। वे एक जाने-बूझे साम्यवादी हैं—ज़मींदारी प्रथा को नष्ट कर देने के हामी हैं, देश के उद्योग धन्धों के राष्ट्रीयकरण यानी बड़े-बड़े कल कारखानों को सरकारी सम्पत्ति क़रार देने के सब से बडे हिमायती हैं, पर यह सब होते हुए भी लगातार दो सालों से वे गांधीवादी कांग्रेस की सदारत कर रहे हैं और इस खूबी से कर रहे हैं कि उनके विरोधी भी चकित और मोहित हैं। कांग्रेस का ज्वायण्ट फ्रण्ट यानी

सम्मिलित मोर्चा किसी भी हरकत से, कहीं पर से, कमज़ोर न होने पावे प्रत्युत उसे सभी समुदायों और वर्गों का सहयोग प्राप्त होता जाय–वे इसी कार्य में दत्तचित्त हैं। दूसरी जीती-जागती मिसाल कांग्रेस के कौंसिली चुनाव की है। जवाहरलाल जी न तो सरकारी कौंसिलों में कांग्रेसियों के जाने के पक्षपाती थे और न मंत्रिपद ग्रहण करने के समर्थक थे पर कांग्रेस ने जब दोनो ही बातें उनकी मरज़ी के खिलाफ़ तै कर दी तब वे कांग्रेस के हुक्म को सर पर रख कर चुनाव के कार्य-क्षेत्र में कूद पड़े और आज मन्त्रियों पर होने वाले आक्षेपों और इल-ज़ामों को, ढाल बन कर, स्वत अपने ऊपर ले रहे हैं क्योंकि उनका कथन है और सही ही कथन है कि कांग्रेस मंत्रिमडल के लिए हम सभी कांग्रेस वाले ज़िम्मेदार हैं। हमारी नज़रों में तो जवाहरलाल प्रजातन्त्रवाद (Democracy) के मुजस्सिम अवतार हैं। हां, वे कांग्रेस-विरोधियों, और बने हुए रगे हुए कांग्रेसमैनों के जानी दुश्मन हैं। जो लोग हाथों में आरती लिए स्वाधीनता देवी के मन्दिर की ओर विघ्न बाधाओं को दूर करते बढ़ते चले जा रहे हैं उनके मार्ग के रोड़ों से जवाहरलाल क्यों कर मिल्लत कर सकते हैं? ऐसे ही ज़लील लोग जवाहरलाल से नाराज़ हैं। जवाहरलाल जी का कहना है कि ग़द्दारों और जयचन्दों को देश से व कांग्रेस से झाड़ू मार मार कर निकाल देना चाहिए और जितनी ही जल्दी उनसे पिण्ड छूटे उतना ही हमारी राष्ट्रीयता व स्वाधीनता के लिए हितकर है।

* * *

जवाहरलाल जी पंडित मोतीलाल नेहरू के एकमात्र पुत्र हैं—उन मोतीलाल जी की सन्तान हैं जो अपने महान् त्याग और अपूर्व बलिदान के कारण देश के स्वाधीनता-प्राप्ति के इतिहास में अजर-अमर हो चुके हैं।

स्वर्गीय मोतीलाल जी इलाहाबाद के सबसे बड़े वकील थे। देश में उन दिनों, उनकी टक्कर के, अकेले बंगाल के शेर, दास बाबू ही गिने जाते थे। उनकी क़ाबलियत, वकालत और बहस की शोहरत दूर-दूर तक गूँज उठी थी। उनकी याददाश्त की तारीफ़ यह थी कि जो मिसल एक बार उनकी नज़रों के सामने से गुज़र गई वह मानो दिमाग़ पर नक्श हो गई। जिस मुक़-दमे में वे हाथ डाल देते, उसकी जीत निश्चित रहती। बड़े-बड़े राजा-महाराजों को उनके दरवाजे पर, कानूनी सलाह के लिए टक्कर खानी पडती थी। उनकी फ़ीस भी बहुत लम्बी थी। एक-एक मुक़दमे में, राय-मशविरा भर के वे ५०-५० हज़ार रुपये ले लेते थे। वे कहा करते थे कि, रुपया तो मेरे बूट की नोक पर बरसता है। उन्होंने करोड़ों ही पैदा किये और करोड़ों ही पानी की तरह बहा दिये। अदालत के जज उनकी योग्यता का इतना लोहा मानते थे कि उनकी राय और तजवीज़ के ख़िलाफ़ फ़ैसला देते हिचकते थे। उनके मकान आनन्द-भवन में प्रान्त के गवर्नर बहुधा दावतें उडाने आते थे और होम मेम्बर के समान ऊंचे सरकारी पदाधिकारी महल के समान उनके घर में हफ़्तों पड़े लोटा करते थे। पंडित जी अपने ठाठ-बाट और शान शौकत के लिए मशहूर थे। उन्होंने अपने रहने के लिए

संगमरमर का आलीशान महल बनवाया था, जहाँ क़ीमती विदेशी शराबों के चश्मे बहा करते थे। मोतीलाल जी ठेठ अंग्रेज़ी लिबास में रहते, और ऐसा मशहूर है कि उनके कपड़े पेरिस से धुल कर आते। यह बात सन् १९००-१९१० की है जब देश के लोग विलायती रहन सहन और सभ्यता के सम्पर्क में नहीं आये थे और बिजली के प्रकाश से शहर और क़स्बे रोशन नहीं हुए थे। कहने का मतलब यह कि, मोतीलाल जी जीवन का पूर्ण उपभोग करने के क़ायल थे और ज़िन्दगी को सूफी फकीरों की दृष्टि से देखने से इनकार करते थे। पर जिस वक्त अमृतसर में गोली चली और जलियानवाला बाग़ में डायर और ओडायर ने, हज़ारों निहत्थे बेगुनाह हिन्दोस्तानियों की जानें लीं उस वक्त मोतीलाल जी के दिल में तड़पन और तब्दीली हुई। उस वक्त तक वे नर्मदल के लोगों में से थे और ब्रिटिश सरकार की दियानतदारी में काफ़ी भरोसा रखते थे। पर जलियानवाला बाग़ के हत्याकाण्ड से उनका मन बदल गया। उनकी आत्मा ने पंजाबियों के ख़ून की पुकार को सुना। वे लाहौर पहुंचे और पीड़ित पंजाबी भाइयों की मदद में जी-जान एक कर दिया। उन्होंने अपने हृदय की चीत्कार को नर्मदल के सभी नेताओं तक पहुंचाया, पर, उन लोगों पर कोई असर न पडा। अतएव मोतीलाल जी ने लिबरलदल छोड कांग्रेस से सम्बन्ध स्थापित किया। उन्होंने लाखों रुपये महीने की चलती वकालत पर निर्मोही बन कर लात मार दी और कांग्रेस की बागडोर हाथों में ली। क़ीमती विलायती कपड़े जला दिये गये--विदेश

शराबों के दौर बन्द हो गये। जहाँ पहले हाकिम-हुक्काम, जज और बेरिस्टरान आते-जाते थे, वहाँ कांग्रेस के नेता और स्वयं-सेवक आदर-सत्कार पाने लगे। मोतीलाल जी जो काम करते थे, अपने नाम के अनुरूप ही करते थे। किसी क्षेत्र में पीछे रहना तो वे जानते थे ही नहीं। जब ऐशो-आराम की ज़िन्दगी थी तब उसमें सबसे आगे थे और जब त्याग और सेवा का रास्ता पकड़ा तब एक स्वर से वे त्यागमूर्ति कहलाये। दानियों में वे कर्ण थे। सब कुछ दे चुकने के बाद, मृत्यु से कुछ ही पहले वे अपना रहने का मकान आनन्द-भवन भी कांग्रेस कार्य के लिए देश को सौंप गये जहाँ आज अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का स्थायी दफ़्तर है। स्वास्थ्य ख़राब होते हुए भी, बुढ़ापे में दमा जैसे भीषण रोग से ग्रस्त होते हुए भी वे बार-बार जेल जाते रहे और अन्त मे सन् १९३१ की ६ फ़रवरी को राष्ट्र की सेवा करते-करते वे परलोकगामी हुए। उस आख़िरी वक्त में भी उन्हें यही फ़िक्र थी कि हिन्दोस्तान का झण्डा नीचा न होने पावे। वे कितने आदरणीय थे इसका पता एक ही बात से लग जाता है कि, इस युग के सबसे बड़े तपस्वी, महापुरुष महात्मा गान्धी उनकी बीमारी के काल में हफ़्तों उनकी खाट के निकट रहे और अन्त में जब उनकी अर्थी बाहर निकली तब गान्धी जी उसमें कन्धा लगाये हुए थे। लाखों की भीड़ अपने महान् नेता को आख़िरी बिदायगी देने के लिए जमा थी। लोग रो रहे थे—चुपके-चुपके सिसक रहे थे और कराह-कराह-कर कह रहे थे कि मोतीलाल जी के उठ जाने से हम लोग लुट

गये ! महात्मा जी ने भी हृदय के अपने उद्गार प्रकट करते हुए कहा था कि मोतीलाल क्या मर गये—मैं विधवा हो गया। बड़े पण्डित जी महात्मा जी के दाहिने हाथ थे। उनके उठ जाने से राजनीति-शास्त्र का एक धुरन्धर पण्डित उठ गया है और जो स्थान उनके चले जाने से ख़ाली हुआ है उसकी पूर्ति आज तक नहीं हो पाई है।

*　　*　　*

जवाहरलाल जी, ऐसे ही अज़ीमुश्शान पिता की यादगार के रूप में हमारे बीच में विराजमान है। भारतीय महिला समाज की मुकुट-मणि कमला भाभी भी नियति के कठोर नियम के कारण हमारे बीच से उठा ली गई हैं। उनके प्रतिनिधि भी अब जवाहरलाल ही हैं। जवाहरलाल जब हमारे सामने खड़े होते हैं तब एक साथ, कितनी सोई हुई स्मृतियाँ जागृत हो उठती हैं। मोतीलाल जी, कमला जी, और आनन्द-भवन की सुखद स्मृतियाँ सभी तो इस एक ही शख़्स की शख़्सियत में निहित हैं। अतएव जवाहरलाल अब हमारे लिए दुगुने, तिगुने प्रिय हैं। समूचे नेहरू ख़ान्दान की कुरबानियाँ देश मे अब अपना रंग ला रही है। जवाहरलाल इन कुरबानियों के प्रतीक और प्रतिनिधि है।

*　　*　　*

जवाहरलाल में वही योग्यता है, वही तेजस्विता है और वही पवित्रता है जो मोतीलाल जी और कमला जी में थी। उम्र और अनुभव का जब तक़ाज़ा हुआ तब दूरन्देशी भी इनकी सहचरी बन गई। आज राष्ट्र की प्रगति और गति-विधि पर जवाहरलाल

की छाप लग चुकी है जो दिन पर दिन गहरी होती जाती है। इनकी सच्चाई, इनकी नेकनीयती और इनकी ग़रीबपरवरी के कारण भारत की कोटि कोटि जनता इनके हाथों बिक चुकी है।

* * *

जवाहरलाल जी ने लड़कपन का ज़िक्र करते हुए अपनी आत्मकथा में लिखा है कि "मेरा लालन-पालन ठेठ अंग्रेज़ी ढग से हुआ है। मेरा बचपन एक अंग्रेज मेम की गोदी में बीता है। लडकपन में, पिता जी के अंग्रेज़ दोस्तों से मिलने जुलने का सदा साबका पडता रहा है अतएव मेरे अन्दर अंग्रेज़ियत की बू-बास बहुत रही है। मेरे पढ़ानेवाले शिक्षक भी बहुत करके अंग्रेज़ ही थे जिससे वैसे ही सस्कार मेरे मस्तिष्क पर पड़ते गये। कहने का आशय यह है कि मेरे जीवन का प्रारम्भिक और काफ़ी लम्बा काल अंग्रेजी सभ्यता और चाल ढाल के बीच में ही बीता है।"

ऐसे जवाहरलाल आज भाषा, भाव और भेष में पूर्णरूपेण भारतीय बन गये हैं। अंग्रेज़ी में एक कहावत है Blood is thicker than water' अर्थात् ख़ून का असर कहां जा सकता है। यद्यपि जवाहरलाल अंग्रेजी भाषा के धुरन्धर पडित हैं पर उनके भाषण प्रायः सीधी-सादी हिन्दोस्तानी भाषा में ही होते हैं। देश के करोड़ों दुखियों और दरिद्रों की ग़रीबी कैसे दूर हो, भारत के मजदूरों और किसानों के भयंकर शोषण का किस तरह अन्त हो— ये ही विचार उनके मन में—अन्तस्तल में गूंजते और घूमते रहते हैं। ढीला-ढाला खद्दर का मोटा कुर्ता,

खादी की ही नुकीली टोपी, जवाहर कट की वह मशहूर फ़तुही और नाज़ुक सी कमर पर खादी की मोटी धुरन्धर धोती जवाहरलाल के गोरे गुलाबी शरीर की शोभा बढ़ाती रहती है। जिनके राजकुमारों से रूप पर बेशकीमती कोट, पैण्ट, नेकटाई कालर और हैट सुशोभित रहा करते थे, जिनके सुनहले मुखड़े पर अंग्रेज़ी कट के सुनहले बाल लहलहाया करते थे और जिनके कोमल पैरों में सौ सौ दो दो सौ रुपये की क़ीमत के बूट विलायत तक से फिट होने आते थे वे आज किसानों और मज़दूरों के समान फ़क़ीरी भेष बनाये, सर घुटाये, चप्पल चटकाते दर-दर अलख जगाते घूमते हैं। देश के लोग इनसे सबक़ लें। स्कूलों और कालेजों के बने ठने विद्यार्थी इनके शीशे में अपना मुखड़ा देखें। सुन्दर सलोने, बड़े-बड़े बालों वाले, कोट पैण्ट धारी नये-नये नेता जवाहरलाल के नमूने की नक़ल करें। देश के युवा और युवतियां रास रंग का सरंजाम छोड़ जवाहरलाल के क़दमों पर चलने का अभ्यास करें। हमारे तुम्हारे पास न तो वैसा रूप-रंग है और न फैशन बना सकने के वैसे अपरिमित साधन हैं। जवाहरलाल का चरित्र लिखने और पढ़ने से यही नतीजा निकलना चाहिये कि हम अपने शरीर और मन को उनके सांचे में ढालने की कोशिश करें और उस उद्देश्य को समझने की चेष्टा करें जिसकी ख़ातिर परमेश्वर ने हमें जन्म और जीवन देकर इतना बड़ा बनाया है।

* * *

दूसरा परिच्छेद !

— राष्ट्रीयता की पहली चोट —

घर पर, बालक जवाहरलाल यद्यपि विद्वान अंग्रेज़ शिक्षकों से पढ़ते थे, पर उनके पिता पण्डित मोतीलाल इतने से ही सन्तुष्ट नहीं थे। वे चाहते थे कि जवाहरलाल ठेठ अंग्रेज़ बने और अंग्रेज़ी क़ानून का पण्डित बन कर उनके नाम को रोशन करे। अतएव वे जवाहरलाल को साथ लेकर इंगलैंड तशरीफ़ ले गये। यह बात सन् १९०५ की है जब जवाहरलाल १५ साल के निरे लड़के थे। इंगलैंड में कोई सात साल रह कर जवाहरलाल ने वहां के मशहूर स्कूल, कालेज, और विश्वविद्यालय में ऊंचे दर्जे की तालीम हासिल की और बैरिस्टर बन कर स्वदेश वापस लौटे। जवाहरलाल जी बचपन से ही पढ़ने-लिखने के शौक़ीन रहे हैं। वे आज भी रेल में मुसाफ़िरी करते, मोटर या बैलगाड़ी द्वारा गांवों का दौरा करते समय, पढ़ते और मनन करते पाये जाते हैं। इस छोटे से जीवन में नित्य ही कुछ पढ़ा और गुना जा सकता है। मनुष्य जीवन पाने का यही महत्व है कि वह अपने नित्य के नये नये प्रयत्नों और अनुभवों से ऊंचे उठने की कोशिश करता रहे। और पण्डित जवाहरलाल में यही आदत है जिसे उन्होंने बड़े सांस्कृतिक ढंग से संस्कार बना, अपने दैनिक जीवन में उतार लिया है। विलायत में तो अच्छे

से अच्छे अख़बार और बढ़िया से बढ़िया किताबें छापे में छपती रहती हैं जिन्हे देखते और पढ़ते रह कर जवाहरलाल अपने ज्ञान का विस्तार करते रहते थे। इस तरह ज्यों ज्यों दिमाग़ी उन्नति होती गई त्यों त्यों तबियत राजनीति की ओर मुडती गई। वे देश विदेश की हलचल और राजनीतिक कामों में दिलचस्पी लेने लगे। कहते है कि बालक जवाहरलाल जिस वक्त हर्रो के पब्लिक स्कूल में पढ़ रहे थे उस वक्त वहां सरकार का आम चुनाव हुआ। चुनाव सम्बन्धी ख़बरों को जवाहरलाल जी ने ग़ौर से पढ़ा था। एक दिन उनके स्कूल के मास्टर ने सब लड़कों से नई सरकार के मन्त्रियों के नाम पूछे और चुनाव सम्बन्धी कई सवालात किये। स्कूल के अंग्रेज़ बच्चे निरे किताबी कीड़े थे-उनमें से कोई भी उन सवालों का ठीक ठीक जवाब न दे पाया। पर जब जवाहरलाल जी की बारी आई, उन्होंने देश की मौजूदा राजनीति और राजनीतिक दलों का खुलासा करते हुये एक एक मन्त्री का नाम बता दिया। इस घटना से वह मास्टर इन पर बहुत खुश हुआ और उसने कहा था कि यह लड़का राजनीतिक ससार में कुछ करके रहेगा।

जवाहरलाल जी के साथियों में कई स्वदेशवासी भी थे। कई राजा महाराजों के लडके यानी राजकुमार भी जवाहरलाल जी के सहपाठी थे। इसके अलावा बंगाल के स्वर्गीय नेता श्री सेनगुप्ता, बिहार शरीफ़ के लीडर डाक्टर महमूद, पंजाब के डा० किचलू और अपने प्रान्त के श्री तसद्दुक अहमद खां शेरवानी इनके साथी या सहपाठी थे जो आगे चल कर एक एक करके

देश-सेवा के मैदान में कूद पड़े। देहली के मशहूर डाक्टर, डा० अनसारी जिनका अब परलोकवास हो गया है उन दिनों विलायत ही में थे और ये सब लोग आपस में मिल बैठ कर स्वदेश की चर्चा किया करते थे। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में इन लोगों ने अपनी एक जमात क़ायम की थी जिसमें राजनीतिक वादविवाद हुआ करते। जवाहरलाल इन मजलिसों में हमेशा शामिल होते। उन दिनों जो बड़े-बड़े हिन्दुस्तानी लीडर इंगलैंड आते, वे उस सभा में बोलने के लिये आमन्त्रित किये जाते। जवाहरलाल जी की मौजूदगी में पंजाब के शेर लाला लाजपतिराय, बंगाल के गर्जनाचार्य श्री विपिनचन्द्र पाल और महाराष्ट्र-रत्न श्री गोखले वहां पधारे थे और देश की समस्या पर भारतीय विद्यार्थियों के सामने बोले थे। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता लाला हरदयाल और श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा जो अपने तेज़ राजनीतिक विचारों और कार्यक्रम के कारण भारत छोड़ कर चले जाने को मजबूर हुए थे, उन दिनों योरप में या विलायत में रहा करते थे उनसे भी पण्डित जी मिले थे। सन् १६०७ के लगभग अपने देश भारत में एक लहर उठी थी। लोग अंग्रेज़ों की गुलामी से छुटकारा पाने को उकसे थे। दक्षिण में महाराज बाल गंगाधर तिलक, पूर्व में अरविन्द घोष और उत्तर पछाँह में लाला लाजपतिराय शेरों की तरह गरज उठे। भारतवासियों के दिलों में एक टीस उठी थी—भारतमाता को अंग्रेज़ों के ज़ुल्मी पञ्जे से छुड़ाने की एक हविस हुई थी। अंग्रेज़ी सरकार वाले बंगाल के टुकड़े करना चाहते थे। उनकी मरज़ी थी

कि बंग-भंग करके बंगाल की तेजस्वी आत्मा को कुचल दें। बंगाल में एक क्रान्तिकारी मनोवृत्ति थी—वीर बंगालियों के मनों में देशमाता की ख़ातिर मर-मिटने की लौ लगी थी जिसे बुझा देने, जिसे बुझा देने के लिए अंग्रेज सरकार प्रयत्नशील थी। उसी वक्त से, वहीं से, स्वदेशी चीज़ों के प्रचार की लहर चली है जो आज बढ़ते बढ़ते सारे भारत में फैल गई है। उन्हीं दिनों श्री अरविन्द घोष पकड़ लिए गये और फाँसी के तख्ते पर लटकते-लटकते बचे। वे—देवता के समान पवित्रात्मा हमारे तुम्हारे सबके सौभाग्य से अभी जीवित हैं और पांडी-चेरी नामक स्थान पर रमे हुए अखण्ड तपस्या कर रहे हैं। इनके अलावा महाराज तिलक नज़रबन्द कर लिये गये थे। ये ख़बरें रोज़-बरोज़ विलायत पहुंचती रहती थीं और जवाहरलाल बेचैन हो-हो कर अपने साथी-संगियों से परामर्श किया करते थे कि हम क्या करें। उनकी इच्छा थी कि हम देश वापस जा कर आज़ादी की लड़ाई में हिस्सा लें। बड़ी गर्मागर्म बहसें होतीं। इंगलैंड में रहते हुए वे देखते थे कि अंग्रेज़ बच्चों को देश पर मर-मिटने का सबक़ लड़कपन से ही सिखलाया जाता है। वहीं से, उनके मन में यह बात पैठ गई कि जब तक देश पर विदेशी हुकूमत है तब तक देश के प्रत्येक समझदार बच्चे का कर्तव्य है—धर्म है—कि वह अपने सारे जीवन को भारत-माता की सेवा के लिए अर्पण कर दे। इंगलैंड के मकतब में जिस तरह अंग्रेज़ बच्चे अपनी पितृभूमि इंगलैंड पर श्रद्धा बढ़ाते उसी तरह जवाहरलाल रोज़-बरोज़ अपनी दुखिता, पीड़िता,

पराधीना भारतमाता पर श्रद्धा और भक्ति के फूल चढ़ाते। इंगलैंड में जवाहरलाल वहाँ के लोगों को जल्सों में, घरों में, सभा-सोसाइटियों में कहते-सुनते पाते थे कि "हिन्दोस्तान हमारा अधीन मुल्क है—उस पर हमारा शासन है—उस पर हमारा राज्य है। हमारे बुजुर्गों ने—क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्ज से लोगों ने—बड़ी बड़ी तकलीफ़ें उठा कर और बड़ी बड़ी लड़ाइयाँ लड़ कर, तलवार के बल-बूते पर हिन्दोस्तान को हासिल किया है। अतएव हिन्दोस्तान हमारा मातहत है—हिन्दोस्तान का बच्चा बच्चा हमारा गुलाम है—अपना ख़ून बहा कर भी हिन्दोस्तान को गुलाम बनाये रखना प्रत्येक अंग्रेज़ बच्चे का धर्म है।" इंगलैंड के बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ अपने भाषणों में बार-बार इंगलैंड की जनता को यह बतलाया करते कि, "हिन्दोस्तान के ज़रिये से ही इंगलैंड मालामाल हुआ है। हिन्दोस्तान के साथ तिजारत करने से ही एक-एक रुपये की चीज़ को पच्चीस-पच्चीस और पचास पचास रुपये में बेचने से ही इंगलैंड फला-फूला है। एक कपड़े की रफ़्तनी से ही अरबों रुपया हर साल हिन्दोस्तान से इंगलिस्तान दुवा चला आ रहा है। हिन्दोस्तान में लाखों अंग्रेज़ शासन करने के लिए हर साल भेजे जाते हैं जो लम्बी-लम्बी तनख़्वाहें पाते हैं और वापस लौटने पर ज़िन्दगी भर के लिए मोटी-मोटी पेंशनों के हक़दार बन जाते हैं। हिन्दोस्तान में बड़े-बड़े मालदार नवाब और रजवाड़े हैं जहाँ हमारे रेज़ीडेण्ट रहते हैं। ये रेज़ीडेण्ट लोग और इनकी मेमें हीरे जवाहरातों से लद-फँद कर इङ्गलैंड वापस आया करते हैं।

इसके अलावा वायसराय हैं, गवर्नर हैं, कमिश्नर हैं, कलक्टर हैं जो सब-के-सब भारत का शोषण करने में तेज़ी से जुटे हुए हैं। ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा के नाम पर हिन्दोस्तान में बड़ी भारी गोरों की फ़ौज रहती है जिसका ख़र्चा ये हिन्दोस्तान वालों से ही वसूल करते हैं। अरबों रुपये का सोना हर हफ्ते हिन्दोस्तान से विलायत ढुवा चला जा रहा है जिसके बदले में हिन्दोस्तानियों को काग़ज़ के नोट मिल रहे हैं।" हिन्दोस्तान में रहने वाले गोरों और गोरों की फ़ौजों के लिए हजारों लाखों तन्दुरुस्त गउओं के झुण्ड के-झुण्ड, रोज़ाना, सालाना, कटते चले जा रहे हैं। गोरे कहते हैं कि हिन्दोस्तान की इस गर्म आबोहवा में हम गोमांस खाये बग़ैर जीवित नहीं रह सकते। थोड़े में इतना कह देना काफ़ी है कि भारतीय जन-समुदाय से स्वर्ण धन और गो-धन नष्ट किया जा रहा है। हमारी क्षीणता में अंग्रेज़ों की शक्ति फलती-फूलती चली जा रही है और हम—निर्बल और अशक्त से हम—कातर आँखों से दुख-दर्द के इस नज़ारे को टुकुर-टुकुर निहार रहे हैं। जवाहरलाल जी इन बातों पर ज्यों ज्यों सोचते थे त्यों-त्यों उनके दिल की बेचैनी बढ़ती थी—वे ख़ून के आँसू बहाते थे। देश का बन्दी-जीवन भी देशवासियों के लिए कोई जीवन है? वे सोचते कि हम देश की बेचैन आत्मा को कैसे चैन और शान्ति दे सकेंगे। वह, ऐसा वक्त था जब इंगलैण्ड वाले भारतीय आन्दोलन के दमन के लिए तन, मन, धन से जुटे थे। जवाहरलाल के भीतर-ही भीतर अग्नि कण सुलग रहे थे। वे अपमान का घूँट पी-पी कर रह

जाते। भारत में जितनी बार गोलियाँ चलतीं, भारत के उस पार बैठे हुए जवाहरलाल के उतने ही घाव हो जाते। यह वही सीने पर की पहली चोटें हैं जो आज बढ़ते-बढ़ते इतना बड़ा घाव बन गई हैं। इंगलैण्ड की स्वतन्त्र भूमि पर—वहाँ के स्वाधीन वायुमण्डल में—देशभक्ति का जो पौधा जवाहरलाल के युवक हृदय में उगना शुरू हुआ था, वह आज विशाल वृक्ष के रूप में पुष्पित और पल्लवित हो कर इतना बड़ा हो गया है कि उसकी साया के नीचे करोड़ों नर-नारियों का समूह शीतलता और शिक्षा पा रहा है। राष्ट्रीयता के इस अज़ीमुश्शान दरख़्त के नीचे बैठ कर हज़ारों तेजस्वी युवकों का दल मन्त्रोच्चार कर रहा है कि "है दुनिया मे पाप गुलामी।" मोतीलाल जी ने जवाहरलाल को ठेठ अंग्रेज़ बनाना चाहा था, पर भारतमाता की पीड़ा ने उन्हें ठेठ भारतीय बना दिया। हो सकता था कि वे किसी बड़े ज़िले के कलक्टर या कमिश्नर बन जाते, सम्भव था कि वे भारत के वकीलों में मोतीलाल जी से भी बड़े वकील साबित होते और यह भी मुमकिन था कि बड़े से-बड़े ख़िताब उनके नाम के आगे झूलते होते, पर, आख़िर हम बेबसों और बेकसों के भी तो भाग्य थे। झूठी शान, सरकार-परस्ती और ऐशोआराम की ज़िन्दगी पर लात मार वे हमारे रहनुमा बने। और सन् १९१२ में जब वे विलायत से घर लौटे, उनके हृदय में राजनीतिक उथल-पुथल के तूफ़ान उठे हुए थे।

* * *

वर्षों बाद घर वापस आने पर कितनी खुशी होती है। बिछुड़े हुए घरवालों से मिलकर ऐसी उमंग आती है जैसे बुझती हुई दीपक की लौ को स्नेह की धारा मिल जाय। अपने मां-बाप से मिल कर जवाहरलाल भी फूले नहीं समाये। पिता की आज्ञानुसार आपने वकालत शुरू कर दी और कोर्ट में आने जाने लगे।

जवाहरलाल जी उसी वक्त से कांग्रेस के जल्सों में भी शरीक होने लगे थे। उन दिनों की पुरानी बूढी कांग्रेस नर्म दल के, मायूस विचारों के, जी हुजूरों के हाथो में थी जो साल में एक बार जलसा करके बहस-मुबाहसा के लिए इकट्ठा हुआ करते थे। इन लोगों में इतने गज़ब की बुजदिली थी कि ये लोग सरकार को कडवी आलोचना--जबानी आलोचना--करते भी डरते थे। जवाहरलाल सन् १६१२ में जब पहली बार पटना कांग्रेस में शामिल हुए तो वहां आपको विलायती सजधज के कोट पैंट-धारी बाबू लोग ही नज़र आये। उस वक्त के बड़े बड़े नेता भी विलायती कपडा पहनते नही शरमाते थे। वही, जवाहरलाल जी, पहली बार गोपालकृष्ण गोखले से मिले। गोखले जी उन दिनों प्रवासी भारतवासियो के कष्टों को दूर करने का आन्दोलन कर रहे थे। जवाहरलाल जी उस शुभ कार्य मे उनका हाथ बॅटाने लगे। जवाहरलाल जी वकालत तो नाम मात्र की करते, हर वक्त राजनीतिक चर्चा और उलझन मे गिरफ्तार रहते। होते होते सन् १९१४ में अंग्रेज सरकार और जर्मनी के बीच युद्ध छिडा। देश की जनता और लीडरों के मन में अंग्रेज़ी हुकूमत के साथ

विरोध था । मिसेज़ बिसेन्ट (बीबी बसन्ती) ने इन्हीं दिनों होमरूल लीग स्थापित करके स्वाधीनता का आंदोलन चलाया था। देश में ज़रा सी जान आई थी । पर सरकार ने उन्हें पकड़ कर नज़रबन्द कर दिया। जवाहरलाल जी ने मिसेज़ बिसेन्ट के काम में काफ़ी हाथ बटाया था। उस वक्त तमाम नेता मुंह मोड़ गये थे। जो लोग लम्बी लम्बी स्पीचें देते थे वे डर कर घरों के अन्दर बैठे रहे । त्याग और तकलीफ से जो लोग डरते हैं जवाहरलालजी उनसे नफ़रत करते है। वे कहा करते हैं कि बग़ैर जुटे और मरे हम एक क़दम भी आगे नहीं बढ सकते। सन् १९१६ की बात है जब जवाहरलाल जी पहली बार, करमिट या मरमिट की लगन वाले नेता से लखनऊ कांग्रेस में मिले थे। वेमहात्मा गांधी थे। गान्धी जी दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों का नेतृत्व करके, सफल सत्याग्रह करके आये थे। बाद में, बिहार में निलहे गोरो के मुक़ाबिले में वे किसानोंका पक्ष लेकर लड़े और उसमें भी जीते । जवाहरलाल जी उस वक्त से प्रभावित हो गये कि भारतीय राष्ट्र का नेतृत्व कर सकने योग्य यदि कोई व्यक्ति है तो केवल महात्मा गान्धी है।

* * *

सन १९१६ की बसन्त पञ्चमी का दिन जवाहरलाल जी के जीवन का चिरस्मरणीय दिवस है। उस दिन, देहली में, जवा-हरलाल जी की शादी बड़ी धूम धाम और बड़े टीम-टाम से हुई थी। जवाहरलाल जो जैसे सुन्दर, सुशिक्षित और सम्पन्न वर को पाने के लिए काश्मीरी-समाज में होड़-सी लग गई थी।

एक-से-एक अमीर घराने वालों ने शादी के पैग़ाम भेजे, पर, मोतीलाल जी ने सबों से नाहीं कर दी। वे ऐसी पुत्र-वधू चाहते थे जो अप्सरा के समान सुन्दरी हो और सीता के समान सुशीला हो। ऐसी पुत्र वधू उन्हे देहली में कमला जी के रूप में मिल गई। हमारे एक मित्र जो जवाहरलाल जी की बारात में शामिल हुए थे बतलाते हैं कि पं० मोतीलाल ने अपने लड़के की शादी में लाखों रुपये पानी की तरह बहाये थे। जवाहरलाल जी के भाग्य से कमला जी उन्हे पत्नी के रूप में प्राप्त हुईं जो आगे चल कर सावित्री के समान सती और झाँसी की रानी के समान वीर-बाला साबित हुईं। जैसा कि पाठकों को आगे के पृष्ठों में पढ़ने को मिलेगा--कमला जी जवाहरलाल जी की सच्ची सहधर्मिणी थीं।

तीसरा परिच्छेद !

— गाँव की ओर —

पिछले पन्नों में, पाठक, जर्मन-जंग शुरू होने का थोड़ा सा अहवाल पढ़ चुके हैं। उस वक्त अंग्रेज़ लोग घबड़ाये हुए थे, वे साम्राज्य-रक्षा के लिए परेशान थे। उन्होंने हमारे नेताओं से बड़े-बड़े वादे किये थे कि युद्ध के समाप्त होते ही हम तुम्हें देश के शासन में सुधार और अधिकार देंगे। गान्धी जी सरीखे महान् नेता भी उस घड़ी उनकी कूटनीति के चक्कर में आ गये और अंग्रेजों का विश्वास कर बैठे। जवाहरलाल जी भी सरकार को लड़ाई के काम में सहायता देने के कार्य में पड़े थे। महात्मा जी अपनी टूटी-फूटी तन्दुरुस्ती की हालत में भी गुजरात के गाँव-गाँव में घूमे। लार्ड चेम्सफोर्ड उस वक्त भारत के वायसराय थे। उन्होंने गान्धी जी को बारबार बुला कर प्रार्थना की कि, "आप जर्मन-जंग में हमें अपनी बहुमूल्य सहायता दीजिये। हम लोग अपने मतभेदों को लड़ाई के बाद तै कर लेंगे।" गान्धीजी ने विश्वास किया कि यह व्यक्ति विश्वास-पात्र है। उन्होंने अपील निकाली कि लोग लड़ाई पर जाने के लिए फ़ौज में भरती हों। अंग्रेज़ सरकार ने हमें निहत्था बना डाला है, हमारी तलवारें तक छीन ली हैं, बन्दूक चलाने की कला में हम सर्वथा अनभिज्ञ हैं, रिवाल्वर, तमन्चे और

बन्दूकें लाइसेन्स मिलने पर ही लोग रख सकते हैं। इन चीज़ों के लाइसेंन्स साधारणतया मिल ही नहीं सकते। सरकार का ख़याल है कि हिन्दोस्तानी हथियारबन्द हो जाने पर हमसे ही मोर्चा लेने की तैयारी कर देंगे। यह सरकारी ख़याल सही है या ग़लत, इससे हमें कुछ वास्ता नहीं, पर, हथियारों के छिन जाने से हम बुज़दिल बन गये हैं, हम कमजोर हो गये हैं--किसी भी लडाई-भिडाई के लिए हम अपने को असमर्थ पाते हैं। गाँवों के लोग लूट लिए जाते है, पहाड़ों की तराइयों में शेर और चीते, ढोरो, पशुओं और मनुष्यो को चट करते रहते है पर, सरकार वाले हथियार नही देते। शहरों के लोग कलक्टरो और डिप्टी साहबों की खुशामदें करते रहते है, अर्जियाँ भेजते रहते है पर कोई सुनवाई नही होती। हमारा यह निहत्थापन और हमारी यह बेबसी हमारे लिए तो घातक है ही पर यह नीति किसी दिन अंग्रेज सरकार को भी ले डूबेगी। इस वक्त संसार भर मे भावी महायुद्ध की तैयारियाँ जोरों शोरो से हो रही हैं। संसार के बड़े बड़े राष्ट्र दो कैम्पों मे,—दो विभागो में—बट गये हैं। अंग्रेज़ सरकार के प्रबल विरोधियों और दुश्मनो में जर्मनी, इटली और जापान के नाम लिए जा सकते है। इन देशों के एक-एक आदमी गोली चलाने की कला में दक्ष है, सैनिक शिक्षा पाये हुए है, हवाई जहाजों की लड़ाइयाँ सीखे हुए हैं। इस तरह बीस बाईस करोड सैनिक ब्रिटिश साम्राज्य से ताल ठोंकने के लिए आमादा हो रहे हैं। यदि भारतवासियों के पास बन्दूकें हों, यदि उन्हे सैनिक-शिक्षा दी जाय और यदि

उन पर विश्वास किया जाय तो यदि ब्रिटिश सरकार अपना राजनीतिक व्यवहार हमसे ठीक रक्खे तो हम आड़े वक्त पर उनके लिए बड़े काम के साबित हो सकते हैं। पर अंग्रेज़ों की रीति-नीति जुदी है। "काम पड़े कछु और है, काम सरे कछु और" जिस वक्त जर्मन-जंग छिड़ी हुई थी उस वक्त इनकी आँखों में मायूसी थी, एक भोलापन था, एक हमदर्दी थी पर जब इन्होंने लड़ाई जीत ली, उस वक्त इनकी शक्ल में तब्दीली आ गई। ये अपने वादों को भूलने लगे। इनकी बातों में मिठास की जगह खटास आगई। ज्यों-ज्यों देश के नेता कहते कि सरकार! हमे स्वराज्य की कोई क़िस्त दीजिये। हमने धन से, जन से, मन से, योरपीय महायुद्ध मे आपकी बड़ी सहायता की है, त्यो, त्यो अंग्रेज शासक हम पर किटकिटाते, हमसे क्रूर व्यवहार करते, दमन करते, जेलखानों मे डालते, गोलियाँ चलाते। और गोया यह काफी न था इसलिए उन्होंने पंजाब को रौलट एक्ट जैसे काले कानून से जकड दिया। सारे पंजाब में फौजी क़ानून यानी मार्शल-ला जारी हो गया। अमृतसर के जलियानवाला बाग़ में निहत्थे भाइयों ने एक सभा करके इस ज़ालिमाना क़ानून के लिए अपना विरोध ज़ाहिर किया। ध्यान रहे कि इस सभा में हज़ारो आदमी थे-बच्चे बूढ़े सभी थे, सभी कोई निहत्थे थे-केवल मौखिक विरोध भर ज़ाहिर करने के लिए वहाँ जमा हुए थे। पर सरकार वाले इस छोटे से प्रदर्शन को भी बरदाश्त न कर सके। जो लोग जलियानवाला बाग़ की तीर्थ-यात्रा कर आये है वे जानते हैं कि इस बाग़ में जाने आने के

लिए महज़ एक छोटा सा सकरा रास्ता है। बाग़ के अन्दर वाले मैदान में सभा हो रही थी कि इतने में हज़ारों गोरों की बन्दूक़-बन्द फ़ौज आई। उसके साथ में गोले भी थे, तोपें भी थीं। तोप दरवाज़े के मुहाने पर लगा दी गई और सैनिकों ने अन्दर घुस घुस कर मजमे पर गोलियों की वर्षा की। ऊपर से हवाई जहाज़ मडराने लगे और उन्होंने सैकड़ों आदमी और बच्चे चना-चबेना की तरह भून डाले। खून का दरिया बह रहा था उस बाग़ में, और लाशें तडप रही थीं--तैर रही थी, जैसे मच्छ और घड़ियाल तैरें। आज भी जलियानवाला बाग़ में गोलों और गोलियों के निशानात आस-पास के मकानों पर बने हुए हैं। मार्शल-ला के ज़माने में जनरल डायर ने पजाब के हज़ारहा लोगों को बेइज़्ज़त किया, पेट के बल रेंगा-रेंगा कर कीड़े-मकोड़ों की तरह चलवाया, यहां तक कि लोगों की गुदाओं में डण्डों और किरचों से जलता तारकोल घुसडवाया। स्त्रियों के-पंजाबिन बहनों के-स्तन कटवा लिये गये। अनेकों का जीवन और सतीत्व नष्ट किया गया। छोटे-छोटे बच्चों का क़त्ल हुआ। दूकानों को लुटवा लिया। मोटरों को ज़ब्त कर लिया। जर्मन-जंग को जीते हुए ताक़त वालों ने हम बेबसो और बेकसों पर वो वो जुल्म ढाये जिनका बयान नहीं हो सकता, नहीं हो सकता। थोड़े में इतना कह देना अलम होगा कि जर्मनी के युद्ध में मदद देने के बदले में स्वराज्य की जो पहली क़िस्त मिली, वह थी हमारे सब से खुशनुमा, ज़रखेज़ और दिलावर प्रान्त पंजाब की तबाही। मार्शल-ला के ज़माने में पंजाब में कोई आ जा नहीं

सकता था। जब फ़ौजी कानून उठ गया तब कांग्रेस ने इस पैशाचिक कांड की जांच के लिए एक कमेटी बैठाई। इस कमेटी के सदस्य थे प० मोतीलाल जी, देशबन्धु सी० आर० दास और जवाहरलाल जी थे सेक्रेटरी। पंजाबी भाई-बहनों ने इस कमेटी के सामने खून के आंसू बहा २ कर बतलाया कि उन्हें किस तरह मारा कूटा और काटा गया था। जर्मन-जंग में जी जान होम कर मदद करनेवाले पंजाबियों को न तो उलाहना दिया गया, न आगाह किया गया, न चेतावनी दी गई और न अपराधी ठहराया गया। एकही बार, एक ही लमहे में, फांसी का हुक्म बोल दिया। हमारे नेतागण गवाहियां लेते वक्त रो रो देते थे और तभी से ये अंग्रेज़ों की ज़ालिमाना हुकूमत के विरोधी बन गये। महात्मा जी ने, पंजाब के काले क़ानून का विरोध करने के लिए सारे देश में सत्याग्रह सभायें चलाई थीं जिनके द्वारा पंजाब वालों की हिच-कियां ज़रा थमीं। अमृतसर की कांग्रेस के सभापति पं० मोतीलाल जी थे और यद्यपि तिलक महाराज उस वक्त ज़िन्दा थे पर गांधी जी की जयजयकार से आकाश पाताल एक हो रहे थे। गांधी जी का नाम तभी से देशपूज्य हो गया है। जिस जगह, जिस प्रान्त में, मुसीबत पड़ती है, जहां सर्वनाश की मशाल जलती है उस जगह, वहां, अनाथों के आँसू पोंछने के लिए गांधी जी की हस्ती मौजूद रहती है। गांधी जी का नाम अब इस मुर्दा देश के लिए संजीवनी और सब से बड़ा सहारा हो गया है।

अमृतसर में मोतीलालजी के सभापति होने से जवाहरलाल जी को कांग्रेस के कार्य में भाग लेने का काफ़ी मौक़ा मिला और

उन्होंने रफ़्ता रफ़्ता देश के दरिद्रनारायण किसानों की दर्दनाक समस्या को समझना शुरू किया। गांधी जी के चम्पारन और खेडा के किसान अन्दोलनों से उन्होंने काफ़ी सबक़ लिया। इन्हीं दिनों एक ऐसी घटना घटी जिससे जवाहरलाल जी को किसानों के सीधे सम्पर्क में आजाना पडा। आप अपनी बीमार माता और पत्नी के साथ मंसूरी (पहाड) गये हुये थे। वहां के जिस होटल में आप ठहरे उसी में अफग़ानिस्तान से आये हुए कई सरदार लोग ठहरे थे। कुछ ही दिनों पहले अंग्रेज सरकार और अफ़गानिस्तान के बीच लडाई हो चुकी थी और ये लोग सुलह की शर्तों के सिलसिले में हिन्दोस्तान आये थे। सरकार वाले यह नहीं चाहते थे कि जवाहरलाल सरीखे देशभक्त, स्वाधीन देश के स्वाभिमानी सरदारों के सम्पर्क में आवें, अतएव सरकारी आज्ञा को लेकर पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट आपके पास पहुंचे कि यातो वचन दीजिये कि यहां रहते हुए हम इन अफ़ग़ानों से नहीं मिलें जुलेंगे या २४ घण्टे के अन्दर मंसूरी छोड कर चले आइये। जवाहरलाल जी का यद्यपि उन अफ़ग़ानों के साथ उस वक्त तक कोई व्यवहार न था पर फिर भी उन्होंने इस शर्त के साथ वहां रहना नापसन्द किया और माँ व पत्नी को छोड़ कर इलाहाबाद वापस आगये। उसी अवसर पर, इत्तफाक से, परतावगढ़ जिले के कोई २०० किसान अपना दुखडा रोने प्रयाग के नेताओं के पास आये थे। पंडित मोतीलाल जी की गैर-मौजूदगी में वे लोग जवाहरलाल जी से ही मिले—ताल्लुक़ेदारों और ज़मींदारों के ज़ुल्म बयान

किये और अपनी दुर्दशा का वास्तविक चित्र दिखलाने के लिए उन्हें गांवों की ओर बुला लेगये। रेल की पटरी और पक्की सड़क से बहुत दूर, कच्ची पगडंडी से होते हुए जवाहरलाल अन्दर प्रदेश के सुदूर गाँवों में गये। वह पहला ही मौक़ा था जब जवाहरलाल जी किसानों के बीच में घूमे, उनके घरों पर ठहरे, उनके दुःख और दारिद्र पर रोये। उन्होंने देखा कि देश के अन्नदाता किसान दाने दाने को तरस रहे है। उनकी स्त्रियों के तन पर गहनों की तो बात ही क्या साबुत कपड़े भी नहीं है। उनके बच्चे—जो आगे चल कर बोझ ढोयेंगे, हल चलायेंगे, खेती किसानी करेंगे, चुल्लू-चुल्लू भर दूध के लिए रें-रें कर रहे हैं। देहातों में न हँसी है न खुशी है—सर्वत्र ग़रीबी, कंगाली, भुखमरी, घर घर में नगा नाच, नाच रही है। तिस पर जल्लाद ज़मींदार उनकी सूखी हड्डियों, झुलसी खालों, फूटे बर्तनों और टूटी झोपड़ियों से न केवल लगान वसूल करते हैं प्रत्युत मोटर खरीदने के लिए मोटरावन और हाथी लाने के लिए हथौना टैक्स लगाते है। किसानों के खड़े खेत काट लिए जाते हैं। उनके ढंगर खूँटों पर से खोल लिए जाते हैं। जवाहरलाल जी ने ये बातें प्रत्यक्ष देखीं और उनकी बातें दर्द भरे दिल से सुनीं। जवाहर-लाल के व्याख्यानों को हज़ारों किसानों ने सुना जिनमें उन्होंने किसानों को मजबूत बनने, संगठित होने और जागृत होने का मन्त्र दिया था। उस वक्त वह ज़माना था जब विरले ही नेता गाँवों की ओर जाते थे। किसानों को ऐसा लगा कि हो-न-हो यह जवाहर किसी-न-किसी दिन हमारे दुःख और दर्द को

भेटेगा। जवाहरलाल जी उस पहली ग्रामीण-यात्रा से इतने प्रभावित हुए कि फिर बराबर देहातों में आते-जाते रहे। एक बार का ज़िक्र है जब रायबरेली जिले में कांग्रेस का कार्य हो रहा था, कार्यकर्तागण वहाँ गये हुए थे—जवाहरलाल जी भी पहुंच गये। एक दिन गाँवों का दौरा करते-करते वे एक ग़रीब किसान के दरवाजे पहुँचे और उसकी चौपाल में बैठ कर खाने को मांगने लगे। किसान, खोया सा, घबराया सा, दीवाना सा वह किसान अन्दर जा कर एक पुरानी हंडिया उठा लाया जिसके अन्दर उसका सबसे बढ़िया खाद्यपदार्थ था। उसमें थे तिल और काले गुड़ के कुछ लड्डू जिन्हें उसने बड़े प्रेम से निकाल कर जवाहरलाल के हाथों पर रख दिया। जवाहर-लाल मुग्ध हो गये—उसकी ज़िन्दादिली पर—उसके अतिथि-सत्कार पर और उन्होंने वे लड्डू, मिठास की सराहना करते-करते, फक्कड़पन के साथ खा डाले। इस घटना को जब ज़िले के वालण्टियरों ने सुना, वे बहुत शर्माये। बात यह थी कि उन दिनों स्वयंसेवकगण लइया और चने पर एतराज़ करते थे और अच्छे भोजन के लिए झगड़ते थे। जब उन्हे पता चला कि उनका इतना बड़ा नेता कभी तिल के लड्डू चाब लेता है और कभी भुट्टों पर गुज़र-बसर कर लेता है तब उनकी आँखों में पानी भर आया। बस, उस दिन से स्वयंसेवकों को जो कुछ मिल गया--उसे उन्होंने इनामे-खुदा माना और तब से, जवा-हरलाल जी की एक बात से, खाने-पीने का प्रश्न, सदा के लिए, हल हो गया। ऐसे ही ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनके कारण जवाहरलाल न केवल कांग्रेसमैनों के प्रिय हो गये हैं प्रत्युत देश-वासी उन्हें आदर, श्रद्धा और प्रेम की दृष्टि से देखने लगे हैं।

चौथा परिच्छेद!

— सत्याग्रह संग्राम —

सन १९२१ की बात है। यह साल भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में अपना खास स्थान रखता है। सन १९२१ में पहली ही बार, अखिल भारतीय ढंग से, आज़ादी की लड़ाई अंग्रेज़ों से लड़ी गई थी और उसमें प्रशंसनीय सफलता मिली थी। इस साल का महत्व इसलिए और भी ज़्यादा है क्योंकि इसी वर्ष सदियों के बिछुड़े हुए दो भाई कलेजे से कलेजा लगा कर मिले थे। हिन्दू और मुसल्मान आपस की नाइत्तफाक़ी को भूल कर, एक दूसरे के सुख-दुख में साझीदार बने थे और साथ-साथ बिरादराने-वतन की तरह, एक दूसरे के गले में हाथ डाले, भारत-माता की खिदमत के लिए आगे बढ़े थे।

पंजाब और खिलाफ़त के मसले देश के अन्दर ग़दरबूद मचाये हुए थे। जलियानवाला बाग़ में हिन्दू और मुसल्मान, साथ-साथ, गोरों की गोलियों के शिकार बने थे, साथ-साथ लाश बन कर गिरे थे और साथ-साथ हिलमिल कर इस जगतीतल से पार उस जगत में गये थे जहाँ हिन्दू और मुसल्मान का नामोनिशान नहीं है—जहाँ परमात्मा और बिछुड़ी हुई आत्मा का संयोग और सम्मेलन होता है। वे घटनाएँ ऐसी थीं जिनसे हिन्दू और मुसल्मान दोनों ही परेशान और बेचैन थे और चाहते

थे कि उसका प्रतिकार हो, उसके खिलाफ़ आवाज़ बुलन्द हो और उसके विरुद्ध मोर्चा और आन्दोलन हो।

इसीलिए कलकत्ते में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन बुलाया गया जिसके सभापति थे स्वर्गीय लाला लाजपतिराय, जो अपने त्याग, अपनी देशभक्ति, अपनी योग्यता और अपनी भाषण-शैली के लिए देश भर में मशहूर हो चुके थे। इसी सम्मेलन में गांधी जी ने सरकार से असहयोग करने का प्रस्ताव रक्खा था। इसी सम्मेलन में पंडित मोतीलाल जी ने असहयोग-प्रस्ताव का पूर्ण समर्थन करके अपने शेष जीवन को गांधीवाद के साथ बाँध दिया था। ६० वर्ष के उस बुड्ढे ने अपने पुराने राजनीतिक विचार दफ़न कर दिये, जीवन भर के साथी-संगी छोड़ दिये, वकालत छोड़ दी और अपने जीवन को सञ्चालित किया नये ढंग से, नये तर्ज़ से, नये भावों से, नये नये सिद्धान्तों के बल-बूते से। उन्हें दुःख था, पञ्जाब के हत्याकाण्ड का, अंग्रेज़ों की बेइन्साफ़ी का, सरकार की संगदिली का और देश की बेहुर्मती का। वे गांधी जी के व्यक्तित्व से प्रभावित हुए थे। त्याग और तपस्या की मूर्ति गांधी जी ने उनके दिल पर वह डोरी डाली थी कि मोतीलाल जी की सारी दृष्टि बदल गई। उस वक्त से ही कांग्रेस में गांधी-युग का आविर्भाव हुआ है जो ईश्वर की दया से, सत्य और अहिंसा के बल-बूते से, और महात्मा गान्धी की महान तपस्या से बराबर फलता-फूलता जा रहा है। अंग्रेज़ी ढंग के कपड़ों—कोटों और पैंटों का स्थान--धोती और कुरते ने ले लिया है। विलायती वस्त्र के स्थान पर पवित्र खद्दर हमारी पोशाक में शामिल हुआ

है। अंग्रेजी की जगह पर हिन्दी हिन्दुस्तानी मातृभाषा ने सारे देश में अपना स्थान जमाया है। उच्च श्रेणी के चन्द पढ़े-लिखे लोगों के बजाय मध्यम और निर्धन श्रेणी का भारतीय-समाज आज़ादी की लड़ाई की ओर आकर्षित हुआ है। हमारी भाषा, भेष और भाव में भारतीयता—राष्ट्रीयता—आई है। हमे इस बात का गर्व होने लगा है कि हम भारतीय हैं और महात्मा गांधी व जवाहरलाल नेहरू के देशवासी हैं। ये तब्दीलियाँ गांधी-युग के आगमन के साथ ही हुई है।

हाँ, तो फिर, कलकत्ते में असहयोग का प्रस्ताव पास हुआ। उस प्रस्ताव के विरोध में लाला जी थे, देशबन्धु दास थे, तिलक महाराज थे, पर प्रस्ताव बड़े बहुमत से पास हुआ था। कुछ ही दिनों बाद कौंसिलों यानी धारासभाओं के चुनाव होने वाले थे—कांग्रेस ने उनका बायकाट किया। धारासभाओं का यह बहिष्कार इतना सफल रहा कि असहयोग प्रस्ताव के विरोधी नेताओं को भी नागपुर की कांग्रेस में, जो कलकत्ते के तीन मास बाद ही हुई थी, गांधी जी के पक्ष में आ जाना पड़ा। उस आन्दोलन के द्वारा महात्मा जी ने देश की आत्मा में मन्त्र फूँका कि "दुनिया में गुलामी महापाप है"—"स्वाधीन बनना तुम्हारा धर्म है।" इस मन्त्र को लाखों देशवासियों ने प्यासे मुसाफ़िरों की तरह पिया। इन पीने वालों में हिन्दू भी थे और मुसल्मान भी। दोनों यह महसूस कर रहे थे कि हमारे हाथों में हथ-कड़ियाँ हैं और पैर बेड़ियो के शिकञ्जे में कसे हुए हैं। कैसे सोने के दिन थे वे, जब मौलवी, मौलाना, पंडित और स्वामी

साथ-साथ अल्लाहो अकबर, भारतमाता की जय और महात्मा गान्धी की जयजयकार के नारे लगाते थे। उन्हीं दिनों की बात है जब दिल्ली की सुप्रसिद्ध जामा मस्जिद में स्वामी श्रद्धानन्द मुसलमान भाइयों द्वारा ऊँचे तख़्त पर बिठाये गये थे जहाँ वे मुसल्मानों की आलीशान सभा के सदर बने। अली भाई—मौलाना मुहम्मदअली और शौकतअली—गांधी जी के उन दिनों पट्टशिष्य थे और राष्ट्रीय आन्दोलन के ज़बरदस्त स्तम्भों में से थे।

ऐसे वक्त मे जवाहरलाल जी यू० पी० के गॉव-गाँव का दौरा कर रहे थे। उन्होंने हज़ारों गॉवो मे पञ्चायतें क़ायम करवाई, जिनके कारण मुक़दमे सरकारी अदालतों मे जाने बन्द हो गये। जवाहरलाल जी लिखते है कि उन दिनों हम लोग दिन रात देश का ही काम करते थे। स्वराज्य हमारा लक्ष्य था और उस लक्ष्य तक पहुंचने का साधन था विलायती कपड़े का बायकाट, अदालतों का बहिष्कार, खद्दर का प्रचार, अंग्रेज़ी सल्तनत से तर्कमवालात। सरकार को खटका हो गया था कि फ़ौज बाग़ी हो जायगी। उन्हे शुबह था कि पुलिस हमारे विरुद्ध हो गई। किसानों ने ज़मीदारों के ज़ुल्मों के खिलाफ़ आवाज़ उठाई और जवाहरलाल ने उनकी वह आवाज़ बुलन्द की। इस पर सरकार ने दमन की चक्की चलाई। हज़ारों कांग्रेस वाले जेल-खानों में डाल दिये गये। हजारों रोज़ पकड़े जा रहे थे। हज़ारों, रोज़, नये नये आगे बढ़ कर चले जाने वालों की जगहे भर देते थे। गांधी जी नित्य नये-नये फ़रमान निकालते जाते थे। लोगों को

नवजीवन और प्रोत्साहन मिल रहा था—सरकार वाले परेशान होरहे थे। गांधी जी को पकड़ने मे डर था कि सेना और पुलिस बग़ावत कर देंगी। अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन इतनी शान्ति से, इतने बड़े पैमाने पर, इस ख़ूबी से चल सकता है इसका किसे भरोसा था? महात्मा गांधी का उज्वल चरित्र और अटल विश्वास ही भारत को आगे बढ़ा ले गया। हाँ उस कार्यक्रम को सफल बनाने मे वीर जवाहर सरीखे योद्धाओ का पूरा हाथ था। रायबरेली मे किसानो के बीच मे गोली चली—जवाहर वहाँ आ पहुंचे। फ़ैजाबाद ज़िले मे ताल्लुक़ेदार लूट लिए गये—जवाहर-लाल वहाँ चट जा धमके। कुछ बदमाशों ने किसानों को भड़का दिया था कि ताल्लुक़ेदारों को लूट लेने के लिए महात्मा गान्धी का हुक्म निकल चुका है। अगर जवाहरलाल वहाँ न पहुंच जाँय, तो तूफ़ान बरपा हो जाय, ज़मीदारो की दुर्गति हो जाय और हजारहा किसानो की जान पर आ जाय। उन्होंने वहाँ पहुंच कर उनकी गलती उन्हे सुझाई—गांधीजी की सत्य और अहिंसा की बात बतलाई। उस सभा मे बोलते-बोलते जवाहरलाल जी पूछ बैठे कि वे पापी कौन हैं जो लूट-मार मे शामिल हुए हैं? मीटिंग मे पुलिस और ख़ुफिया विभाग के लोग भी मौजूद थे, पर इस बात को जानते हुए भी किसानों ने—जिन्होंने माल लूटा था—अपने नेता के आगे भोलेपन से हाथ उठा दिये। हालांकि जवाहरलाल जी की यह ग़लती थी जिससे उन किसानों पर बाद मे मुसीबतें पड़ी, पर कहने का मतलब यह कि लोगों मे अपने नेता जवाहरलाल के प्रति विश्वास की इतनी मात्रा बढ़ी

हो गई थी और वे इतने निर्भीक हो गये थे कि उन्हें जान जाने तक की परवाह नही थी।

* * *

इन्हीं दिनो, विलायत से, ब्रिटिश साम्राज्य के शाहजादे प्रिंस आफ़ वेल्स की तशरीफ़ भारत आई। कांग्रेस ने ऐलान निकाला कि प्रिंस साहब का पूर्ण बहिष्कार किया जाय और जहाँ-जहाँ वे जायँ वहाँ वहाँ घोर हड़तालें करके उनके आगमन से नाराज़ी ज़ाहिर की जाय। इसका कारण यह नही था कि शाहज़ादे के साथ कांग्रेस को—देश को—कोई व्यक्तिगत मुखालिफ़त थी, बल्कि असलियत यह थी कि वह शख़्स ब्रिटिश साम्राज्यवाद का नमूना बन कर, नुमायन्दा बन कर, हमारे देश मे आया था—उस शासन-मण्डल का प्रतिनिधि बन कर आया था जिसने हमारे ऊपर जलियानवाला बाग़ मे नादिरशाही हत्याकाण्ड करके ज़ुल्मो का पहाड ढाया था। प्रिंस का बायकाट हुआ और ख़ूब हुआ। जिस दिन वे जहाँ जाते उस दिन वहाँ स्यापा नजर आता। कलकत्ते की सडकें उनके आगमन के अवसर पर वीरान पडी थीं। इलाहाबाद में मुर्दनी छाई हुई थी। उसी अवसर पर जवाहरलाल जी और मोतीलाल जी की गिरफ़्तारी हुई। क़रीब-क़रीब उसी वक्त मे, प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की कमेटी बैठक करते हुए इलाहाबाद में पकड़ ली गई। लोगों मे जोश की लहर आ गई। राह चलते लोग अपने को गिरफ़्तार कराने लगे। जो लोग आन्दोलन में काम नहीं कर रहे थे वे भी जोश के मारे उबल पड़े और आगे बढ़ आये।

पुलिस की, जेलखाने की, लारियों में लोग घुस-घुस कर बैठ जाते थे और कहते थे कि, हमें जेल ले चलो--हमने क़ानून तोड़ा है। सड़कों पर खेलने वाले लडके 'टोडी बच्चों' की सवारियों पर चढ़-चढ़ बैठते और जेल जाने के लिए जिद् करते। एक समाँ बँधा था--एक जलवा आया था। यह वह नज़ारा था जिसे देख कर भारत की अंग्रेज सरकार के पैर उखड़ गये--मस्ती का नशा उतर गया। पर, इसी बीच में, हमारे तुम्हारे सबके दुर्भाग्य से चौरी-चौरा की दुर्घटना घटी। वहाँ के लोगों ने पुलिस वालो के अत्याचार से ऊब कर पुलिस-चौकी में आग लगा दी और कई पुलिस वालो की जाने ले लीं। गांधी जी देश की नब्ज परखना ख़ूब जानते हैं। उन्हें पता था कि, देश का वायुमण्डल हिंसा की ओर बढ़ रहा है। इस घटना ने उनके विचारों को और भी मजबूत बना दिया कि, आन्दोलन के लिए जो अहिंसात्मक वातावरण जरूरी है, उसका देश में अभाव है। और ऐसा यकीन होते ही उन्होने असहयोग आन्दोलन को स्थगित कर दिया। गांधी जी का कथन है कि अहिंसा में, हिंसा से कई गुना ज़्यादा बल है। वही पूर्णरूप से अहिंसात्मक रह सकता है जो सत्यवादी है, समर्थ है, वीर है और साहसी है। क्षमा वीरस्य भूषणम्--गांधी जी का ऐसा विश्वास है।

शक्ति का स्रोत यह पञ्चमहाभूत का शरीर नही है, बल्कि उसका उद्गम-स्थान तो आत्मा है जहाँ से शक्ति और जीवन का चश्मा निरन्तर अबाध रूप से बहा करता है। कमज़ोर शरीर वाले यह मत समझे कि वे सामर्थ्यहीन है। वे अपनी आत्मा को

निर्भय और बलिष्ट बनायें। जिनकी आत्मा में बल है उनका कोई क्या बिगाड़ सकता है, क्योंकि आत्मा परमेश्वर का दिया हुआ चकमक है, उसी का वह अंश है जिस पर उसकी रक्षा का हाथ सदैव बना रहता है। अतएव परमेश्वर के इस अंश का प्रयोग विनाश में नहीं प्रत्युत निर्माण में करना चाहिये, बुराई में नही प्रत्युत भलाई में करना चाहिये, असत्य में नही बल्कि सत्य में करना चाहिये। जिनकी आत्मा में यह बल उत्पन्न हो जाय उनके सामने पाशविक बल फीका पड जाता है। इसीलिए—गांधी जी कहते हैं—मैंने आत्मबलिदान का मार्ग देश के सामने रक्खा है। यह वह मार्ग है जिस पर चल कर प्राचीन भारत के ऋषियों ने पूर्णता प्राप्त की है—परमेश्वर से साक्षात् किया है और अपने को अपरिमित बल और वैभव का स्वामी बनाया है।

इसीलिए आज मैं भारत के निवासियों से कहता हूँ—गांधी जी फिर कहते हैं—कि तुम अपनी शक्ति और सामर्थ्य को बूझो जो तुम्हारे अन्दर भरी पडी है। वह सो रही है—उसे जागृत करो। वह रास्ता भूल गई है—उसे मार्ग पर लाओ। शरीर नश्वर है—आत्मा अमर है, अतएव शरीर का बल सीमित है और आत्मा का बल असीम है। इस बल को भारतवासी पैदा करें—इसलिए नही कि वे कमज़ोर हैं, निरस्त्र हैं, निहत्थे हैं बल्कि इसलिए कि यही बल सब बलो का बल है और एक यही बल ब्रिटिश साम्राज्य की प्रबल शक्ति से सामना करके, सफलता प्राप्त कर सकता है।

* * *

पाँचवां परिच्छेद !

— जेल जीवन की झलक —

जेलखाने के अन्दर कितनी मुसीबत और कितनी परेशानी रहती है, यह वे ही लोग जानते है, जो भुक्तभोगी हैं, जिन्होंने जेलों में सज़ा के दिन काटे है। जेलखाने की मोटी-सी, चोड़ी सी बाहरी चहारदीवारी के अन्दर कोठरियाँ बनी हुई हैं, जिनमें सीखचेदार किंवाड और खिडकियाँ हैं, मानो वे शेरों के बन्द करने के लोहे के पीजडे हों या घोडों के पालने की घुड़सालें हों। इन कोठरियों को जेलखाने की भाषा में बैरक कहते हैं। ये बैरकें टूटे फूटे खपरैलो से बहुधा छाई रहती है और कच्ची व दीमक लगी चौतरियों से शोभा पाती है। गरमी के दिनों में क़ैदी इन्हीं तंग कोठरियों में, शाम को ५ बजे से ही बन्द कर दिये जाते हैं और लाख चिरौरी-विनती करो, पर उनमे से सुबह के ६ बजे तक निकलने नही पाते। गरमी की रातें जिनमें उमस भरी रहती है उन बैरकों में दूनी दुखदायी प्रतीत होती है। और गोया यह काफ़ी न हो इसलिए डाँस, पिस्सू और मच्छर बाजा बजा-बजा कर और डङ्क मार-मार कर कैदी को सोना हराम कर देते हैं। जेल मे रात भर देख-भाल होती है कि पींजड़ों में बन्द मनुष्य नामधारी कोई प्राणी भाग तो नही गया। हर घण्टे पीछे जमादार लोग बूट धमधमाते, चीखते-चिल्लाते, "ताला

जिंगला लालटैन सब ठीक है हुजूर" की हाँकें मारते, दरवाज़े दरवाज़े जाते हैं और क़ैदियों को उठा-उठा कर उनकी गिनती करते हैं। राजनीतिक क़ैदी जो एक शरीफ़ आदमी होता है, जो किन्हीं सिद्धान्तों के कारण जीवन के सुख-आराम छोडता है, ऐसे वातावरण में जब अपने को चोरों और डाकुओं के बीच में पाता है, तब, क्षण भर को उसके चेहरे पर एक उदासी, एक मायूसी झलक आती है, पर, दूसरे ही क्षण जब उसका स्वाभि-मान जागृत होता है, जब उसे अपने जीवन के सिद्धान्तों की याद आती है, जब उसे यह ख़याल होता है कि, हमारा यह इतना बड़ा देश पराधीन है, तब, एक हल्की-सी मुस्कान उसके अन्तस्तल को भेद कर आँखों की खिडकियों से विकसित हो उठती है--आत्मा बलवती हो जाती है और वह तमाम कष्टों को झेलने के लिए सहर्ष तैयार हो जाता है। उस कष्ट-सहन में एक रस है, जिसे जिसने पिया है वही मस्त हुआ है। सुबह का वक्त है, ५ बज चुके हैं, क़ैदियो को पाखाने की हाजत हो रही है, पर, पींजडे का किवाडा नही खोला जा सकता वह तो समय पर ही खुलेगा--क़ैदियों का काफ़िला गाय और गोरुओं की तरह पांत-पांत से बैठे हुए पाखाना और पेशाब फिरेगा और फिर मुट्ठी-मुट्ठी भर चना चाब कर रामबाँस की कुटाई, चक्की पीसने और कोल्हू पेरने पर लगा दिया जायगा। दोपहर के समय मोटी मोटी चन्द रोटियाँ जिनमें मिट्टी भी कभी-कभी शामिल रहती है और काली-काली दाल क़ैदी की खूराक हैं। फिर वही शाम तक रामबाँस की कुटाई और तेल की पेराई क़ैदी

के मसक़ती जीवन का अंग रहती है। जेल के अन्दर स्त्रियों की मीठी-मीठी आवाज़ें नहीं सुन पडती, बच्चों की तोतली बोली और धमा चोकड़ी नहीं दिखलाई पड़ती। शहरों की इमारतें, गाँवों के खेत, बड़े-बड़े मैदान और सडकों पर विचरते रहने वाले श्वान सभी आँखों से ओझल रहते है। ये बातें जेल से बाहर आदमी के जीवन मे भले ही बहुत महत्व न रक्खें पर जेल के अन्दर इनका अपना स्थान होता है। क़ैदी नमक की एक-एक ककडी के लिए तरस तरस कर रह जाता है। जिन्हें बीडी पीने की हाजत है वे जेलर द्वारा फेंकी हुई, अधजली बीडी उठा कर शौक़ से मुँह में लगा लेते हैं। वहाँ सुनाई पडती रहती है हथकडियों की खटखट, बेडियो की झनकार, कैदियो पर डण्डों की मार, उनकी दयनीय चीख-पुकार, और जेल-अधिकारियो के राक्षसी, ग़ैर-इन्सानी और अपमानकारी व्यवहारों के कारण मची रहती है त्राहि-त्राहि! ऐसा दोजखी जीवन है भारतीय जेलख़ानों का जिनके सुधार की ही नही बल्कि सम्पूर्ण परिवर्तन की आवश्यकता है। जाडे के दिनो में जब शिद्दत की सरदी पड़ती रहती है, क़ैदी जाड़े के मारे ठिठुरा करते है, जेल के अधिकारी पहनने और ओढने को काफ़ी सामान नही देते। चाहे हज़ारहा कम्बल कोठों में भरे पडे हों पर इनकार कर देते हैं--परेशान करते रहते हैं। जेलखाने से चोर, डाकू बन कर निकलते हैं, डाकू क़ातिल बन कर निकलते हैं और क़ातिल पशु बन कर। दूसरे-दूसरे देशों मे जेलख़ाने प्राणी का सुधार करने को बने है, पर अपने देश के क़ैदख़ाने बने हैं प्राणी का नाश करने के लिए, उसे मनुष्यता से

गिरा कर पशु की कोटि मे पहुंचाने के लिए और फिर पशु से गिरा कर मिट्टी में मिला देने के लिए। यह भी आप ब्रिटिश राजनीति-शास्त्र की एक रंगत-एक चाल-ही समझिये, जिससे देशवासियों की घोर अवनति होरही है। इंगलैंड के जेलखानों में कैदियों को महलों के समान मकानों मे रक्खा जाता है, सब तरह का सुख पहुंचाया जाता है, कैदी के भावों में सुधार किया जाता है, उसे अच्छा कपड़ा और खाना दिया जाता है। उसके लिए पादरी धार्मिक शिक्षा देने आता है। उसके ज्ञान को बढ़ाने के लिए विशेष अखबार आते हैं, किताबें आती हैं, गाने सुनाये जाते है। वहॉ की जेलों में बाजे, ग्रामोफोन और रेडियो लगे हुए है। वे ही अंग्रेज़ जो अपने देश के जेलखानों का इतना सुन्दर प्रबन्ध करते हैं, जब हमारा, हमारे जेलखानों का प्रश्न आता है तब सुधार के विरुद्ध हो एकदम बिगाड की राह पर क़दम रख देते हैं और क़ैदी के जीवन को नष्ट करने मे कोई बात उठा नही रखते। पर इसमें दुख काहे का है। सारा देश ही एक बडा भारी जेलखाना है जहॉ सर्वत्र अत्याचार का अंग्रेजी राज्य है। विलायत में चोट्टों और डाकुओं को भी जेलों में सुख से रक्खा जाता है और हिन्दोस्तान में राजनीतिक कैदियो तक को ये मुसीबतें उठानी पड़ती है। यही तो स्वराज्य और परराज्य का अन्तर है जो हमें पग पग पर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ज़ाहिर होता रहता है हमारे कांग्रेस के लाखों स्वयंसेवकों ने रोमाञ्चकारी कष्ट उठाये हैं। जवाहरलाल जी भी इन कष्टों से महरूम नही रहे हैं। कहॉ आनन्द-भवन के सुख—वहॉ के बाग़ बाग़ीचे, संगमरमर का

महल के समान मकान और कहाँ जेलखाने का रूठा, बूढ़ा, रूखा और दिल जलाने वाला वातावरण। पर जवाहरलाल जी एक दो बार नहीं, सात-सात बार कृष्ण-जन्म मन्दिर की यात्रा कर आये हैं और वहाँ जाने के लिए सदैव बिस्तरा बाँधे रहते हैं। देश की बदनसीबी के दिन अभी कुछ और बाकी हैं, जिससे ऐसे ऐसे नौनिहालों तक को ज़िन्दगी के सोने के दिन जेलों में गुज़ारने पड़ते है। कोई पौने दो वर्ष बाद जवाहरलाल पहली सज़ा काट कर वापस आये थे। उस वक्त कांग्रेस का काम शिथिल हो रहा था, लोग आपस में लड़-भिड़ रहे थे। जवाहरलाल ने आते ही इस परिस्थिति को सुधारा और उनके दृष्टिकोण को मजिले मक़सूद की ओर मोड़ा। इन्हीं दिनों इलाहाबाद की म्युनिसिपलिटी ने आपको अपना चेयरमैन चुना। चेयरमैनी के पद पर बोर्ड मे एक साल से ज़्यादा रहकर आपने शहर की हालत को सुधारा। आप प्रान्तीय और अखिल भारतीय कांग्रेस के मन्त्री भी थे अतएव आपको रोज़ाना १५-१६ घंटे काम करना पड़ता था। जवाहरलाल जी की संगठन-शक्ति और काम करने की ताक़त ने सरकार का ध्यान भी उनकी ओर आकर्षित किया। इलाहाबाद हाईकोर्ट के चीफ़ जस्टिस सर ग्रिमउडमियर्स ने सरकारी इशारे पर जवाहरलाल जी के पास आना जाना शुरू किया और उनसे प्रान्त का सरकारी मंत्री बन जाने का अनुरोध किया। पर जवाहरलाल उस धातु के नहीं बने हैं जो जल्दी से पिघल जांय। उनके वैसे-वैसे अनेक प्रस्तावों को पंडित जी ने सप्रेम वापस कर दिया। ओहदे, खिताब और

खुशामद जवाहरलाल के जीवन में कोई स्थान नहीं रखते-कभी नही रक्खेंगे। वे सेवा के भूखे है, वे काम करने के श्रादी हैं, वे नि स्पृह और त्यागी हैं, वे जनता द्वारा दिया हुआ कांटों का ताज पहना करते हैं। पर बेचारे ग्रिमउड मियर्स यह नहीं जानते थे। आखिर में वे अपने प्रयत्नों में असफल रहे और जवाहरलाल जी धीरे धीरे भारत के राजनीतिक आकाश मे चमकने लग गये। उनका, उनकी कार्य-शैली के नाते, अपना स्थान हो चला था। अतएव उन्हे उनके रास्ते से कोई न डिगा सका कोई न डिगा सकेगा। संसार के सभी बडे बडे देश स्वाधीन हैं पर हम ही एक पराधीन हैं। दुनियां के दूसरे लोग रोजमर्रा उन्नति कर रहे हैं-ज्ञान और विज्ञान मे तरक्की कर रहे हैं एक हम ही पिनक में पड़े हुए है। सो क्यों? जवाहरलाल इस सपने को तोडना चाहते हैं--इस ग़फ़लत को मिटाना चाहते हैं और कोशिश में हैं कि हम मामूली-मामूली सी बातों मे उलझना बन्द कर भारत माता को आज़ाद बनाने में जुट पड़े। देश को अनेक जवाहरलालों की ज़रूरत है--कितना बडा देश है अपना-काश्मीर से कन्याकुमारी तक और अटक से कटक तक। जाति धर्म और देश के संस्कार बड़े गहरे होते है। हिन्दोस्तान में रहने वालों की एक ही जाति हो सकती है यानी हिन्दोस्तानी एक ही धर्म हो सकता है यानी देश-प्रेम और एक ही मन्तव्य हो सकता है यानी अपने देश की आजादी। पर हम तो अन्ध कूप में पड़े हैं। जाति-उपजाति के फेर में पड़े चक्कर खा रहे है। हिन्दूपन और मुसल्मानियत की दुहाई देते फिरते हम

तनिक नहीं शर्माते। क्या गुलामों की भी कोई जाति में जाति है? क्या गुलामों का भी कोई धर्म में धर्म है? और यदि है तो एक ही है और उसका नाम है राष्ट्रीयता और राष्ट्रधर्म।

छठवां परिच्छेद !

— नेता का निर्माण —

जवाहरलाल जी का घरेलू जीवन अत्यन्त सुखद रहा है। पिता का प्यार, माता का दुलार, बहनों का स्नेह, और देवता के वरदान के समान मिली हुई पत्नी का प्रेम जवाहरलाल के जीवन में रस घोलता रहा है। जवाहरलाल जी को घर का, सगे सम्बन्धियों का, जो प्रेम प्राप्त हुआ है ईश्वर करे वह सब को हासिल हो। जवाहरलाल मोतीलाल जी के घर के इकलौते बेटे ठहरे, बड़े लाड से पले और बड़े प्यार से बड़े हुए। पढ़ लिखकर समझदार होते ही वे देश की ओर मुड पड़े। घरवाले घबराये पर सनेह और प्रेम के नाते कुछ कह न पाये और जवाहरलाल आगे चले गये। देश सेवा के मार्ग में क़दम आगे बढ़ा देने के बाद पैर पीछे डालने की गुञ्जायश ही कहां है। जिनका दिल दीन दुखियों के क्लेशों से पसीज उठता है उनके लिए फिर ऐश आराम और सुख चैन कहां है। भगवान बुद्ध के जीवन की कथा ऐसे अवसर पर बरबस याद हो आती है। वे राजकुमार थे। एक महाराजा के लडके थे। महलों में पले थे। सुख से जीवन व्यतीत करते थे। उनके पिता सदा चेष्टा में रहते कि दुनियां के दुख की छाया मेरे पुत्र के हियरे पर न पड़ने पावे। पर एक दिन जब राजकुमार रथ पर बैठे नगर घूमने को जा रहे थे, वे

देखते क्या हैं कि, सडकों पर चलने वाले लोग फटे हाल और उदास हैं उनकी आखों में क्लेश है, वेदना है और कष्टों की कहानी है। आगे बढ़े तो देखते है कि चंद भिखमंगे रेरिया-रेरिया कर पैसे-टके की भिक्षा मांग रहे हैं। उनके पेट धँसे हुये हैं-गाल पिचके हुये है-चेहरे पीले पड गये हैं, पर लोग उनकी ओर बगैर देखे बढ़े चले जा रहे है, उन्हे फ़िक्र ही नहीं कि ये जियें या मरें। उससे आगे बढ़े तो बीमार, घाव वालों के ज़ख़्म बहते हुए दिखलाई दिये। जीवन की घुडदौड़ की परेशानी, चेहरों की मुर्दनी, अति की ग़रीबी और ग़ज़ब की बीमारी देखते-देखते राजकुमार उदास होगये। चंद क़दम आगे बढ़े होंगे कि उन्हें एक दुखिया माता दिखलाई दी जिसकी गोद में मरे हुए बच्चे की लाश थी। पैसा पास न होने से इलाज न हो पाया था और काल ने अकाल ही में नन्हीं सी दम तोड़दी थी। माता का रुदन कंकडों और पत्थरों को भी रुला रहा था। राज-कुमार का मन रो दिया। उससे आगे उन्हे मरघट की ओर जाती हुई लाशें दिखलाई दीं। एक बूढ़े पिता के इकलौते नौजवान बेटे की दर्दनाक मौत हुई थी। उसकी लाश पर साबुत कफ़न नहीं था। उसकी टिकटी को उठाने के लिए चार दोस्तों का संग साथ नहीं था, पिता था, माँ थी और था पास का एक पडोसी। यमराज ने अपना मृत्यु दण्ड उस युवक पर चलाकर उनके छोटे से संध्याकाल के निकट पहुंचे हुए, जीवन को बरबाद और बेसहारा कर दिया। इन दृश्यों को देखते-देखते राजकुमार का मन राजसी सुखों से खिंच गया। एक रात्रि में जब उनकी

प्रियतमा सुषुप्ति के आनन्द में पड़ी थी, उनका बालक निद्रा में मीठी मीठी मुस्कान ले रहा था, उन्होंने राजपाट और परिवार से नेह नाता छोड़ संसार के कल्याण के लिए महलों से निकल जगल का रास्ता लिया। वे तप करने चले गये। सुख की, आनन्द की, आत्म-संतोष की, और ससार भर की कल्याण की कामना में वे शेष जीवन डूबे रहे। राजकुमार से वे भगवान बुद्ध बने और संसार के पीडित यात्रियों ने उनकी प्रेम भरी वाणी से अपने कितने ही ज़ख्म और सन्ताप धो धो कर सुखाये। जवाहरलाल जी को उन राजकुमार के समान ही त्यागी और तपस्वी यदि हम मान लें तो विवाद उठने की कोई गुञ्जायश कहां है? उनका जीवन लोक-सेवा के लिए अर्पित हो चुका है जो शायद सब से बड़ी तपस्या है। उनके प्रेम में पड़ कर उनके पिता ने बड़े से बड़े त्याग किये हैं। हमें यह मान ही लेना चाहिये कि, उनके त्याग और उनके प्रभाव के कारण ही सारा नेहरू खान्दान देश-सेवा की राह का पथिक बना है। उनकी बहनों और धर्मपत्नी ने मर्दाना भेष धारण करके ताड़ी और शराब की दूकानों पर पिकेटिंग करने का कार्य किया। लड़के को, त्याग और मुसीबत के मार्ग में बढ़ते देख पिता से चुप न बैठा गया और दोनों जन ने प्रेम और खुशी से देश सेवक का बाना पहना। आमदनी के सब ज़रिये बन्द हो गये। खर्च कम कर दिये गये। घोड़े गाड़ी बेच डाले गये। नौकर निकाल दिये गये। बेजरूरत के सामान नीलाम कर दिये गये। हरे-भरे बाग वीरान हो गये। गुलदस्ते से खिले रहने वाले बाग़

सूख कर कांटों का वन, बन गये, और कुरसी-मेजों व पलंगों को पुलिस वाले कुर्क कर ले गये। जवाहरलाल जी खाने-पीने और जेबखर्च के लिए अपने पिता पर ही आश्रित थे। आपने और कमला जी ने अपने ज़रूरी खर्चे घटाकर नहीं के बराबर कर डाले। दोनों ने खद्दर के मोटे-मोटे वस्त्र धारण किये। दोनों रेल के तीसरे दर्जे में मुसाफ़िरी करने लगे। जवाहरलाल जी अच्छे लेखक हैं। वे लेख और पुस्तकें लिखकर काफ़ी पैसा पैदा कर सकते हैं, पर समय ही कहां है, कहाँ था? इलाहाबाद की म्युनिसिपैलिटी, प्रांतीय कांग्रेस की कारगुज़ारी और अखिल भारतीय कांग्रेस के बड़े दफ़्तर की मंत्रीगीरी से अवकाश ही कहां मिल पाता था? सन् १९२४ में कांग्रेस-क्षेत्र में यह राय ज़ाहिर की गई कि सम्पूर्ण समय देकर काम करने वालों को गुज़ारे मात्र के लिए कांग्रेस की ओर से कुछ पुरस्कार लेना चाहिये। जवाहरलाल जी ने इस प्रस्ताव को पसन्द किया। पर, शाह-मिजाज़ मोतीलाल जी यह कब बर्दाश्त कर सकते थे कि उनका पुत्र कांग्रेस से सहायता ले कर जीवन-यापन करे? अतएव वे वकन्-फ़वकन् बड़े बड़े मुक़दमों में घर ही पर राय-मशविरा देने लगे, जिससे खर्चे भर के पैसे निकल आते थे। इन पिता पुत्र का प्रेम आदर्श प्रेम है जो त्याग और आदर्श की नींव पर उठा और क़ायम हुआ है। पर, जवाहरलाल जी की आज भी यही राय है कि जो कांग्रेस कार्यकर्ता अपना पूरा समय दे कर कांग्रेस का कार्य करते हैं, उन्हें आर्थिक चिन्तना से मुक्त रखना देशवासियों का कर्तव्य है।

ज़िले-ज़िले और शहर-शहर में ऐसे राष्ट्-सेवक-संघ होने चाहिये जो कर्तव्य के नाते देशभक्तों को आर्थिक कठिनाइयों में न गिरफ़्तार होने दें और उनकी दैनिक आवश्यकताओं की देख-रेख रक्खें। कोई कारण नहीं है कि सच्चे जन-सेवक, शुद्ध और सात्विक भावना से अर्पित की हुई ऐसी सहायता को ग्रहण करने में आनाकानी करें। जवाहरलाल जी तब से बराबर कांग्रेस के कार्य में लगे हुए हैं। कांग्रेस का प्रेसीडेण्ट चाहे जो भी हुआ पर, लगातार कई वर्षों से पण्डित जी कांग्रेस के प्रधानमन्त्री होते आये हैं और अब तो कांग्रेस के प्रमुख पद पर वे हमारे राष्ट्रपति ही हैं। आज का अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का सुसंगठित दफ्तर उनकी संगठन-शक्ति का नमूना है। जहाँ पहले लिखा-पढ़ी नहीं के समान थी, कागज़-पत्रों के रखने की व्यवस्था ठीक नहीं थी, पुरानी फ़ाइलें लापता सी रहतीं, काम करने वालों की कमी थी, प्रान्त के दफ्तरों को हिदायतें आने में देरी और लापरवाही होती, वहाँ आज काम-काज की धूम मची हुई है, इलाहाबाद में स्थायी दफ्तर क़ायम हो गया है और दर्जनों कार्यकर्ताओं का सहयोग दफ़्तर के कार्यक्रम को अप-टू-डेट रखता है। आज भी दफ्तर की बागडोर पण्डित जी के ही हाथों में है—उससे उनका अविच्छिन्न सम्बन्ध है। कांग्रेस का कार्य-क्रम अनेक भागों और विभागों में बटा हुआ है। कांग्रेस साहित्य के प्रकाशन और प्रचार का अलग ही महकमा है, विदेशी विभाग जुदा है। काम का बटवारा करके उसका सुचारु रूप से सञ्चालन करने का गुण जवाहरलाल जी में प्रचुर मात्रा मे विद्यमान है।

* * *

सन् १९२३ में पं० जवाहरलाल को देशी रियासत के क़ैद-खाने में रहने का सवाब हासिल हो चुका है। नाभा रियासत की बात है। वहाँ के देशभक्त महाराजा रिपुदमनसिंह को ब्रिटिश सरकार ने गद्दी से उतार दिया था। सिक्खों ने इस अन्याय के खिलाफ़ आवाज़ उठाई थी और सत्याग्रह चलाया था। उनकी लड़ाई असहयोग आन्दोलन के आधार पर ही संगठित हुई थी और पूर्ण अहिंसात्मक थी। ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने नाभा मे एक अंग्रेज़ अधिकारी को एजेण्ट बना कर मुक़र्रर कर दिया जिसके हाथों मे शासन की बागडोर थी। सिक्खों के जत्थे-के-जत्थे नाभा की ओर जाते और गिरफ़्तार कर लिये जाते। जत्थे वालों को पुलिस वाले लाठी और डण्डों से पीटते, बेइज्जत करते और लारियों में भर कर, दूर जगल मे ले जा कर छोड देते। इन्हीं घटनाओं को देखने के लिए सिक्खों ने जवाहरलाल जी को बुलाया था और वे वहाँ गये थे। ज्यों ही आप जैतू नामक स्थान पर पहुंचे, आपको नाभा सरकार ने गिरफ्तार कर लिया। पण्डित जी ने लिखा है कि मेरे हाथों मे लोहे की हथकडियाँ डाल दी गईं और कमर मे रस्सी बाँध कर मुझे शहर के बीचो बीच से ले जाया गया। दो क़ैदी साथ ही साथ बँधे थे—पेशाब तक कर सकने का हुक्म नही था। मुक़-दमा चला। रियासत के एक जज नामधारी मूर्ख से व्यक्ति ने आपको हुकुम-उदूली के अपराध मे डेढ़ वर्ष की सख्त सज़ा का हुक्म सुना दिया। कई दिनो तक पण्डित जी हवालात मे बन्द रहे थे। जब जेलखाने पहुचाये गये तब देखते क्या हैं कि बैरकें

गन्दी, टूट-फूटी और चूहों व मच्छरों से आबाद हो रही हैं। कोठरियों में बदबू थी, सीलन थी और धूल-गर्द थी। वहीं से पण्डित जी को हल्की-हल्की हरारत रहने लगी। मोतीलाल जी ने जब नाभा के अधिकारियों के ज़ुल्मों की दास्तान सुनी तो, उन्होंने इसकी ख़बर गवर्नर और वायसराय तक पहुंचाई। नतीजा यह हुआ कि जवाहरलाल जी थोड़े ही दिनों बाद छोड़ दिये गये। चलते वक्त आपने फैसले की नक़ल माँगी, पर वह भी न दी गई। बाहर आने पर आप कोई महीना भर तक मियादी बुख़ार से पीड़ित रहे और सोचते रहते थे कि इन देशी रियासतों की बूढ़ी हुकूमत और तंग तर्ज़ें अमल मे कब तब्दीली होगी।

सातवां परिच्छेद !

— हिन्दू मुस्लिम सवाल और साइमन कमीशन —

सन् १९२८ का साल हिन्दू-मुसलमानों के एकता-सम्मेलन और विलायती साइमन कमीशन के बायकाट के लिए मशहूर है। हिन्दू-मुस्लिम एकता को स्थायी रूप से क़ायम करने के लिए पं० मोतीलाल जी ने अपने जीवन काल में जितनी कोशिश और जितनी मेहनत की थी वह उनके जीवन के इतिहास में सोने के अक्षरों में लिखी रहेगी। वे कहा करते थे कि, यदि यह सवाल हल हो जाय तो आज़ादी की आधी मंजिल तय हो जाय और उनकी यह बात बिल्कुल सही थी। देश के मुसल्मानों और मुस्लिम लीडरों को उनके प्रति जो सनेह और विश्वास था वह फिर अन्य किसी नेता के प्रति न हो सका। मोतीलाल जी की यह हार्दिक इच्छा थी कि, इस टेढ़े सवाल को वे अपने जीवनकाल मे ही हल कर जायँ और इसीलिए उन्होंने लखनऊ में' दोनों जातियों के बड़े बडे नेताओं की एक कान्फ्रेन्स बुलाई थी। कहते है कि, उनकी दूरंदेशी और योजना से दोनों दलों के लोग सन्तुष्ट थे और समझौता अनक़रीब था पर कुछ साम्प्रदायिक लीडरों की दुखदायी मनोवृत्ति के कारण वह दस्तख़त होते होते रुक गया। इस पर, लखनऊ की सभा ने एक कमेटी मुक़र्रर की और उसका सदर मोतीलाल जी को चुना।

मोतीलाल जी ने अपने दिमाग़, काबिलियत और वकालत के गुण से जो रिपोर्ट तैयार की वह नेहरू रिपोर्ट के नाम से अजर-अमर हो गई है। जब जब यह सवाल उठेगा तब तब देश के लोगों को इस रिपोर्ट का सहारा लेना पड़ेगा। ऐसा कहा जाता है कि, लन्दन की गोलमेज़ कान्फ्रेंस तक में साम्प्रदायिक सवाल के आने पर नेहरू रिपोर्ट के वर्क़ वर्क़ को देखा गया था और छोटे व बड़ों को इत्मीनान होगया था कि समझौता यदि हो सकता है तो उसकी आधारभूत शिला यही रिपोर्ट होसकती है। पर अपने अभागे देश की हालत तो कुछ ऐसी है कि यहां बुनियादी उसूलो को छोडकर ऊपरी बातो मे उलझा जाता है। लोग दरख़्त की जड सींचना नहीं चाहते और ख़्वाहिश करते हैं कि, इसमे फलने-फूलने वाले फल फूल पहले ही से हमारी नज़र मे चढ़ जायें। पुराने वक्त मे,--यानी १०।१५ साल पहले जब जब एकता के नाम पर सभायें हुई, तब तब दोनों क़ौमों के अखाड़िये पहलवान इसलिए जमा हुए कि हम हिन्दू और मुस्लिम हितों की दुहाई देकर अपनी अपनी जाति के लिए कुछ विशेषाधिकार प्राप्त कर लेंगे। इन कट्टरपन्थी लोगो का, हमेशा, नुक़्तये नजर यही रहा कि दोनों जातियां दो कैम्पों में बटी रहें और इसी बात को मद्दे नजर रख कर इन्होंने अपनी अपनी तकरीरों से दोनो क़ौमों के मनमुटाव को बढाया--विरोधी जज़बातो को पैदा किया। हिन्दू पंडित और मुस्लिम मुल्ले देश की बात से वैसे ही दूर थे जैसे गधे के सर से सींग दूर होते है। इन्हें मुल्क की बहबूदी की उतनी ही कम परवा थी जितनी

कि दसवीं शताब्दी में जयचंद को रही होगी। इनमें अकड़ थी, घमंड था, नेतापन का जोम था और क़ौम पर धाक जमाये रहने के लिए तिकड़मों को रचते रहना इनके जीवन का उद्देश्य था। राजनीति में इस तरह के झूठे धर्म के लिए कहां गुन्जायश है और वह भी गांधी की राजनीति में तो असत्य, बनाव और छल-छिद्र के लिए स्थान ही नहीं रह गया है। इस श्रेणी के जातीय नेताओं ने न तो कभी कोई त्याग किया है और न सेवा का उद्देश्य अपनी आँखों के सामने रक्खा है। ज़माना तरक्की कर रहा है—लोगों के दृष्टिकोण में देश का मुख्य प्रश्न सब से ज़्यादा महत्व रखने लगा है, अतएव इन नेताओं का उरूज़ ख़त्म हो चुका है--कम-से कम-हिन्दू जाति से तो खत्म होचुका है और जिस दिन मुस्लिम भाइयों में भी अपने मुल्क के लिए मर मिटने की सामूहिक लगन पैदा हो जायगी जो रफ्ता रफ्ता हो चली है उस दिन मुसलमानों के अन्दर से भी ज़हर उगलने वाले और हिन्दुओं से फूट डलवाने की चेष्टा करने वाले लीडरों का लोप हो जायगा। अफ़ग़ानिस्तान के देशभक्त बाद्-शाह शाह अमानुल्लाख़ा ने हिन्दोस्तान पधारने पर यहां के मुस-लमानों को उपदेश दिया था कि "तुम जिस देश में जन्मे हो उस की बहबूदी का सब से पहले लिहाज़ करो। तुम्हारे मुल्क मे, तुम्हारे साथ साथ जो कौमे रहती है उनसे भाईचारे के सम्बन्ध रक्खो। हिन्दोस्तान किस तरह आज़ाद हो इस पर विचार करके अमल करो। हिन्दोस्तान के विदेशी शासक दोनो क़ौमों को एक नही होने देना चाहते—इसे तुम निश्चय

समझो।" इसी तरह टर्की के मुस्तफ़ा कमालपाशा ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है कि देश-भक्ति और देश-प्रेम तुम्हारा सबसे पहला धर्म है। टर्की में बड़े से बड़े परिवर्तन हो चुके हैं। वहां के मुल्ले राजनीति से जुदा कर दिए गये हैं। वहां महिलाओं में परदे का लोप हो गया है। वहां स्त्री और पुरुष में बराबरी का सम्बन्ध है। दोनों हिलमिल कर दफ़्तरों और दूकानों पर काम करते हैं। टर्की की हूरों के समान सुन्दर बहनें अंग्रेज़ी ढंग के बाल कटाये, ऊंची ऐंडी के जूते पहने सर्वत्र खटखट करती चली जाती हैं। पर हिन्दोस्तान के दुर्भाग्य से यहां की मुस्लिम बहनें अब भी परदे का शाप भुगत रही हैं और यहां के दकियानूसी लोग इस बीसवीं सदी में भी प्राचीनता का राग अलाप रहे हैं। दोनों कौमों के झूठे सामाजिक बंधन इतने सख़्त और धर्म के आडम्बर से ढके-मुंदे हैं कि हम लोगों को एक दूसरे से मिलने, एक दूसरे के घरों में आने-जाने साथ उठने बैठने, ग़लत फहमियां दूर करने और मुहब्बत का प्रचार करने के मौके ही नहीं मिलते। ऐसी हालत शहरों में ज़्यादा है--देहातों में कम है। यह परिस्थिति दोनों के लिए ख़तरनाक है। इसका नाश कर देना दोनों क़ौमों के नौजवानों को शोभा देता है। जिन्दगी झगडे के लिए नहीं--मारा-मारी के लिए नहीं, दिल में शको शुबह और गबार भरे रहने के लिए नहीं, बल्कि है मुहब्बत का दरिया बहाने के लिए, जिसमें नहा कर बालक और बड़े बूढ़े अच्छे नागरिक और बेहतरीन आदमी बन सकें। इसीलिए जवाहरलाल ने एकता-सम्मेलनों का चक्कर

छोड़ हमें एक नया तरीक़ा सुझाया है। वह है मास कान्टैक्ट का, जन-सम्पर्क का, साधारण हिन्दू और मुस्लिम जनता के घरों और दिलों तक पहुंचने का। आज हमारे सामने मुख्य प्रश्न वेद और क़ुरान का नहीं है बल्कि पेट की ज्वाला को शान्त करने का है। रोटियों का सवाल हिन्दू और मुसल्मान दोनों ही के लिए एकसाँ है। समाज का आर्थिक ढांचा बिगडा हुआ है। दोनों ही क़ौमों के सेठ और नवाब अपनी अपनी ग़रीब जनता का शोषण कर रहे हैं। क्या मुसल्मान ज़मींदार हमकौम किसानों के साथ कोई रियायत करते है? क्या हिन्दू मिल-मालिक हिन्दू मज़दूर के साथ अच्छा व्यवहार करते हैं ? क्या महाजन और बनिये उधार देते वक्त क़ौम के आदमी का ख्याल करके व्याज के निर्ख में या पैसा वसूलयाबी में ज़रा भी इन्सानियत वरतते हैं? खेतों पर काम करने वाले किसान क्या हिन्दू किसान और मुसल्मान किसान हैं ? क्या कल-कारखानों और आग की भट्टियों के सामने काम करने वाले श्रमजीवी हिन्दू मजदूर और मुस्लिम मज़दूर के नाम से पुकारे जाते हैं ? नहीं। तो फिर स्टेशनों पर हिन्दू पानी और मुस्लिम पानी की क्यों गुहार लगती है ? आटा दाल ख़रीदने और बेचने के लिये क़ौमी खरीदारों और क़ौमी दुकानदारों की क्यों तलाश है ? हिन्दू और मुस्लिम जातियों के लिये जुदा-जुदा स्कूलों की क्यों बुनियाद डाली जाती है ? मस्जिदों के सामने नमाज़ के वक्त में बाजा बजाने से मुसल्मानों का जी दुखता है तो हिन्दू इस वेजा हरकत को क्यों नही बंद कर देते ? गोकशी करने से

देश के २५ करोड़ हिन्दुओं का दिल फटता है—हिन्दू गौ को माता के समान मानता है—तो फिर मुसल्मान गोवध करना क्यों नहीं छोड देते ? गऊ दूध देगी—उसे हिन्दू मुस्लिम बच्चे पियेंगे। गऊ बछड़े देगी—जिसे हिन्दू और मुस्लिम किसान हल जोतने के काम में लायेंगे। गऊ गोबर देगी जिससे ग़रीब कंडे बना कर जाड़ों की रातों में तापेंगे। और यह हो सकेगा—होकर रहेगा, पर यह तभी होगा जब धूप और लू में, एँडी तक पसीना बहाने वाला जीव इसके अदरूनी राज़ को समझेगा। चद सरकारी नौकरियों के बटवारे के पीछे फिरने वाले नेता हमे गुमराह करते रहते हैं। बीन बाजे की आवाज पर नाचने वाले सांप हैं ये लोग। इनकी नज़रों में ये है, इनके घर वाले हैं, इनके चन्द सगे सम्बन्धी हैं जिन्हे ऊची ऊँची तनख़्वाहो पर सरकारी महकमों मे चस्पां कर देना इनका लक्ष्य है। आम जनता इनकी मेहरबानियों से सदा महरूम रहती है। हम जानते है कि इनके मनों मे विष घोलने वाली एक तीसरी शक्ति है। आखिर अंग्रेजो के भारत मे आने से पहले भी तो सैकडो साल तक हिन्दू मुसल्मान साथ-साथ रहते आये है। तब इन दोनो क़ौमों के स्वार्थ एक थे और आज जुदा हो गये। महमूदाबाद के महाराजा कहते फिरते है कि मुसल्मान मुसल्मान से सामान ख़रीदें। ब्रिटिश सरकार के इशारे पर नाचने वाले ये नवाब और सरमायादार आज जाति-हित का झंडा हाथ मे लेकर उठे हैं, पर हम इनसे कहते हैं कि, तुम तो एक क्षुद्र ताल्लुक़ेदार हो, जरा मुगलिया सल्तनत के अकबर, शाहजहां और जहांगीर जैसे बडे-बड़े बादशाहों का

हाल पढ़ो। वे रस बरसाते थे और ये विष उगलते हैं। इन्हीं लोगों के हित के लिए अंग्रेज़ सरकार ने अपना साम्प्रदायिक निर्णय दिया है, म्युनिसिपैलिटियों और ज़िला बोर्डों में हिन्दुत्व और मुसल्मानियत को घुसेड़ा है, कौंसिलों और एसेम्बलियों के लिये जातिगत चुनाव-क्षेत्र रक्खा है। जिस दिन ऐसा नहीं होगा उस दिन महमूदाबाद और शफात की जगह शेरवानी और रफी अहमद किदवई सरीखे देश-भक्त नेताओं का नाम आयेगा। जवाहरलाल इसी कोशिश में है कि वह शुभ घड़ी जल्द आये। जिस ज्वार के साथ यह गंदी मछली सात समन्दरों से पार आई है उसी ज्वार के साथ यह सात समन्दरों पार लौट जाय। हिन्दू, जवाहरलाल को अपना सरताज मानते हैं और मुसल्मानों को भी उनसे मुहब्बत है। दोनों जन मिल कर उनकी कोशिश में हाथ बटावे, क्योंकि काम साधारण नहीं है। जवाहरलाल साम्प्रदायिक नेताओं से बल्लियों ऊंचे खड़े हैं और भारतीय जनता की बुनियादी तकलीफों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। मंजिल दूर है-कठिन है-मुश्किल है, पर जीत उन्हीं की होती है जिनके मनों में श्रद्धा है-विश्वास है-नेकनीयती है और भारतीय राष्ट्र को आजाद बनाने की लौ लगी है।

*　　*　　*

सन् १९२८ का साल साइमन कमीशन के भारत आगमन के लिये भी प्रसिद्ध है। अंग्रेज सरकार ने विलायत से अंग्रेज़ी मेम्बरों की एक कमेटी भेजी थी। यह कमेटी इस बात की जाँच करने देश में आई थी कि, भारतीयों को स्वराज्य के नाम पर

कौन सी छोटी सी क़िस्त दी जा सकती है। इस कमेटी में एक भी हिन्दोस्तानी नहीं था, कमेटी के प्रधान थे सर जान साइमन और इसीलिये उसका नाम साइमन कमीशन पड़ा। यह कमीशन देश भर में घूमा था। जहा जहां गया, वहां वहां साइमन गो बैक, के नारे से उसका स्वागत किया गया। भारत की जनता ने सभी जगह उस कमीशन का बहिष्कार करके तिरस्कार किया। कमीशन जब लाहौर पहुंचा, तब पुलिस के डण्डों ने कितनी ही हड्डियां तोड़ीं और एक अंग्रेज़ सारजण्ट के प्रहार से पञ्जाब-केसरी लाला लाजपतिराय को (कुछ ही दिनों बाद) मृत्यु का ग्रास बनना पड़ा। कितनी ही चोटों और मृत्युओं का अभिशाप लादे यह कमीशन जब लखनऊ पहुचा, तब वहां पण्डित जवाहर-लाल की टोली से उसको सामना करना पड़ा। पं० जवाहरलाल, प्रान्त के प्रसिद्ध नेता पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त के साथ मोर्चा लेने को खड़े थे। उनके नेतृत्व में पचासों हज़ार नागरिक साइमन को काला झण्डा दिखला रहे थे। उन पर घोड़े छोड़े गये। पुलिस के बहादुरों ने उन पर बल्लमों, लाठियों और डण्डों से वार किये। जवाहरलाल जी की पीठ पर काफ़ी चोट आई और पन्त जी की तो रीढ़ की हड्डी ही टूटते-टूटते बची। कोशिश यह थी कि दोनों बड़े-बड़े नेता मार डाले जाय। पण्डित जवाहरलाल गिर गये थे—लोग उन्हे घेर कर खड़े हो गये और उन पर पड़ने वाले वारों को अपने ऊपर लेने लगे। पन्त जी के लम्बे चौड़े विशाल शरीर को हरएक ने अपना निशाना बनाना चाहा, पर यह हज़ारों युद्धों का योद्धा मैदान से डिगाये न

डिगा। कितने ही शहरवासियों का सर फूट गया। कहते हैं कि, साइमन साहब को, सपने में भी, बायकाट, बहिष्कार, और गो बैक का नारा सुनाई देता था। ऐसा मशहूर है कि नई देहली में, रात में जब सियार बोलने लगे, तो साइमन साहब नाराज़ होकर उठ बैठे और बोले कि ये पन्त और जवाहरलाल हम लोगों की नींद और ज़िन्दगी भी इस देश में हराम कर देंगे। उनको ख़याल हुआ कि हो न हो आदमियों की भीड़ हो हल्ला मचाते हमारे बायकाट के लिये बढ़ी चली आ रही है और जवाहरलाल उसका नेतृत्व कर रहे हैं। साइमन साहब तो आख़िर में चले गये, पर जो गन्दी रिपोर्ट वे लिखते गये उसी के आधार पर हमें १९३५ के गवर्नमेण्ट आफ़ इण्डिया एक्ट में कथित सुधार प्राप्त हुये हैं। यह वही क़ानून है—वही-शासन विधान है जिसे लिबरल भाई भी ज़हरीला और अन्याय-युक्त बतलाते हैं और कांग्रेस वाले उसे तोड़ने, उसका विनाश करने को आमादा हैं।
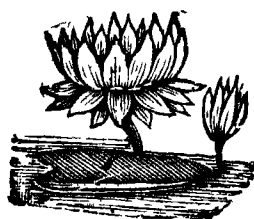
आठवां परिच्छेद !

— कलकत्ता कांग्रेस—मज़दूर आन्दोलन से सम्पर्क —

सन् १९२८ में, कांग्रेस का अधिवेशन, कलकत्ते मे पं० मोतीलाल जी की सदारत में हुआ था। कलकत्ते मे, बडे पंडित जी का जो स्वागत हुआ था उसे आज भी लोग भूले नहीं हैं। जिन लोगों ने सभापति के उस जुलूस को आंखों देखा है, वे बतलाते हैं कि, दसों लाख नर-नारियों का अपार जनसमूह हवड़ा स्टेशन से लेकर, सारी राह मे स्वागतार्थ खडा था। ऊपर की चौखडी और सतखडी अटारियां बालक, युवा, अरठ, नरनारी के बोझों से झुकी जारही थीं। पडित जी की सवारी सोलह घोड़ों को बग्घी पर निकली थी। इस महान् प्रदर्शन और संगठन का श्रेय बगाल के एकछत्र नेता श्रीमान् बाबू सुभाषचन्द्र बोस को था जिन्होंने आई० सी० एस० पास करने के बाद बिजली की तरह—पानी के रेले की तरह—आंधी के झोंके की तरह—बंगाल की राजनीति में प्रवेश किया था। वे दास बाबू के दाहिने हाथ थे और उग्र दल का नेतृत्व करते थे। परिडत मोतीलाल जी सुभाष बाबू को, जवाहरलाल के समान ही प्यार करते थे। हां, तो फिर परिडत जी कलकत्ता कांग्रेस में लखनऊ एकता-सम्मेलन की रिपोर्ट को पास कराना चाहते थे। वह रिपोर्ट सभी फ़िरकों के लोगों ने एकमत होकर बनाई थी और उसका

लक्ष्य था अंग्रेज़ी सल्तनत के अन्दर औपनिवेशिक स्वराज्य। पर पण्डित जवाहरलाल इसके ख़िलाफ़ थे। वे पूर्ण आज़ादी के झण्डे को झुकाने के लिए प्रस्तुत नहीं थे। उन दिनों, इसी बात को लेकर पिता-पुत्र में काफ़ी अनबन रहा करती थी। दोनों एक दूसरे से हफ़्तों बोलते तक नहीं थे। पण्डित जवाहरलाल और उनके साथियों का रुख सख़्त होते देख कर मोतीलाल जी कांग्रेस की गद्दी से इस्तीफ़ा देने तक को तैयार होगये थे। तब महात्मा जी बीच में पड़े और सर्वदल-सम्मेलन वाला प्रस्ताव इस शर्त पर पास किया गया कि यदि एक साल के अन्दर ब्रिटिश सरकार ने औपनिवेशिक स्वराज्य (डूमीनियन स्टेटस) न दिया, तो हमारा लक्ष्य पूर्ण स्वाधीनता होगा और उसकी प्राप्ति के लिए सत्याग्रह आन्दोलन छिड़ेगा। यह तो पहले ही से समझी हुई बात थी कि गवर्नमेंट जो प्रजा की पुकार पर हमेशा बहरी रही है, सर्व दल सम्मेलन के प्रस्तावों पर कुछ न करे धरेगी, पर मसविदे के कारण कांग्रेस मे फूट पड़ने से बच गई और आने वाली आज़ादी की जंग की तैयारियां होने लगीं।

* * *

इसी साल बङ्गाल के झरिया नामक स्थान पर आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस यानी मज़दूर महासभा की बैठक हुई थी, जिसमें पहली बार जवाहरलाल जी ने शिरकत की थी। मज़दूरों की जमात में दो दल थे। भारत में जब सभी जगह-सभी सभा सोसाइटियों में—फूट का बाज़ार गर्म है तब मज़दूर उससे कैसे अछूते रह सकते थे? एक दल ने, पण्डित जी की ग़ैर-मौजूदगी

में सभापति-पद के लिए आपका नाम पेश कर दिया। दूसरे दल की ओर से एक प्रसिद्ध मज़दूर कार्यकर्ता का नाम रक्खा गया जो बंगाल की रेलवे यूनियन का प्राण था। जवाहरलाल जी का नाम बहुत बड़े बहुमत से पास हो गया। जब इस घटना का पता पण्डित जी को चला, उनका खून खौल उठा और वे बोले कि "यदि पहले से मुझे इन हरकतों का पता होता तो मैंने अपना नाम ही वापस ले लिया होता। पण्डित जी की राय है कि जहाँ तक मजदूरों के अन्दर काम करने वाला कोई योग्य मज़दूर, मजदूर-सभाओं की सदारत के लिए मिले वहाँ तक बाहर वालों को उसमें नहीं डालना चाहिये। मजदूर-सम्मेलनों और कर्मचारी-संघों के पदाधिकारी इन्हीं जमातों के अन्दर से जहाँ तक मिल सकें बाहर के लोगों के मुकाबिले में उन्हें ही तरजीह दी जाय, क्योंकि ये लोग अपनी-अपनी जमातों के सुख-दुख का ज्ञान और अनुभव रखते हैं और असली दिक्कतों को जानते हैं। ऐसे लायक़ लोग सभी जमातों में समय-समय पर मिल जाते हैं, जो निर्भयतापूर्वक अपने लोगों का नेतृत्व करते हैं। तब से पण्डित जी बराबर मजदूर-आन्दोलन में दिलचस्पी लेते रहे हैं। उनकी हार्दिक इच्छा है कि मजदूर वर्ग के लोग साम्राज्यवाद और पूँजीवाद से सम्मिलित मोर्चा लें। अपने अन्दर विद्वेष की आग सुलगा कर और पार्टीबन्दी के गन्दे दलदल में पड़ कर मज़दूर अपनी शक्ति को ज़ाया न करें। पण्डित जी की ज़ाती राय है और बिल्कुल सही राय है कि, भारत के अर्थपिशाच मिल मालिक मज़दूर जमात का अज़हद शोषण कर रहे हैं। सन्

१९२८ में, बम्बई के कपडों के कारखानों, बंगाल की जूट-मिलों और जमशेदपुर के लोहे और टीन की मिलों में प्रचण्ड हडतालें हुई थीं। जर्मन जंग और उसके बाद के दिनों में कल-कारखाने वालों ने सौ-सो डेढ डेढ़ सौ फीसदी के मुनाफ़े उडाये थे। इन मुनाफों के दरिया अमीर लोगों के महलों की ओर बह गये और गरीबों के--उनमें काम करने वाले मज़दूरों के-झोपडे ज्यों के त्यों फीके और फूटे पडे रहे। मालिकों ने, मुनाफ़े का कोई भाग भी मजदूरों की आर्थिक दशा सुधारने में खर्च न किया। कलकत्ते के आलीशान मकानो से कोई २०-२५ मील के फ़ासिले पर मजदूरों के रहने-बसने की छोटी, तग और गन्दी कोठरियाँ थीं, जिनमें जाडे में जडाते, गर्मी में तपाते और बरसात में भीगते मजदूरों का काफ़िला मायूसी की, मरी-सी, हालत में गिन-गिन कर जिन्दगी के दिन काट रहा था। मिलो का करोड़ों का मुनाफ़ा अंग्रेज़ मालिको के पास विलायत चला जाता और थोड़ा सा हिन्दोस्तान में ही, काले मालिकों की जेब भरता। पर गोरे और भूरे मिल मालिक--सरमायादार--में कोई फ़र्क नहीं था। दोनों एक ही थैली के चट्टे बट्टे थे और मज़दूरों के शोषण पर पनपते थे। उस हिन्दोस्तानी मिल मालिक को जिसके यहाँ करोड़ों का कपडा हर साल बनता है, इस बात की कहाँ पर-वाह है कि,उसके यहाँ काम करने वाले मज़दूर और उस मज़दूर के बीबी-बच्चे गन्दे और नंगे न घूमें, जाड़ों में सरदी से न ऐंठें। कब कोई मालिक मजदूरों की झोपड़ियों में तशरीफ़ ले जाते हैं और फटे चीथड़े-गूदड़ों के बदले में नये वस्त्रों का प्रसाद देते हैं।

मिल में रोज़ाना तमाम कट-पीस कपड़े और टुकड़े निकला करते हैं, पर ये भी मज़दूरों की फटी धोती में थीगली लगाने के लिए नहीं दिये जाते। "पानी में भी मीन पियासी" वाली दशा है। मिल वालों ने, मज़दूरों को मशीन का पुरज़ा समझ रक्खा है— एक के कमज़ोर या नाक़ाबिल होते ही झट दूसरा बदल दिया जाता है। मुनाफ़े के आँकड़े ज़रा कम हुए कि मालिकों की निगाहों में मज़दूर शहतीरों की तरह खटके। उन्हे इस बात का क़तई ख़याल नहीं कि मज़दूर इतनी कम तनख़ाह पर कैसे गुजर-बसर करेंगे। कुछ मिल मालिक जो अपने को राष्ट्रवादी और मज़दूर हितैषी समझते हैं, मज़दूरी की कमी का समर्थन करते हुए मज़दूरों की फ़िज़ूलख़र्ची और नशाख़ोरी की मिसालें देते हैं। मज़दूरों के लिए शराब और ताड़ी पीना महापाप है—यह बात तो निर्विवाद है और इसे बन्द कराने के लिए प्रत्येक मज़दूर-सभा और कांग्रेस कमेटी को जी-जान से प्रयत्न करना चाहिये, पर, मिल वाले जिस छिद्रान्वेषण के लहज़े में इस बात का इस्तेमाल करते हैं वह उनके लिए शोभनीय नहीं है। मिल वालों ने मज़दूरों को इतना चूसा और सताया है कि मज़दूर बचा शारीरिक और मानसिक व्यथा के हाहाकार से बचने के लिए वारुणी देवी की *शरण लेता है* और उसके *नशे में कुछ क्षण* के लिए अपने दुखों को भूल जाने का नाटक खेलता है। जब वह कष्टों को बरदाश्त नहीं कर पाता, तब, निहत्था, अनाथ मज़दूर हड़ताल की शरण लेता है। आख़िर उसके पास अपना क्षोभ प्रकट करने के लिए, अपना विरोध ज़ाहिर करने के लिए और है ही

क्या ? पर मालिक इसको भी, इस इज़हारे दर्द को भी बर्दाश्त नहीं कर सकते। हडताल मिल वालों की नज़रों में अक्षम्य अपराध है जिसे तोड़ने में, जिसे नाकामयाब करने में सदा ही उनकी शक्ति का प्रयोग होता रहता है। सम्भव है, देश में कुछ इने-गिने हमदर्द मिल-मालिक भी हों, पर, उनकी संख्या नहीं के समान है और यही तो कारण है कि मज़दूरों और मालिकों के बीच गहरी खाई खुदती चली जा रही है। मज़दूर समस्या क्रान्ति की ओर बढ़ रही है। भुखमरी, कंगाली, मक़रूज़ी, फटे-हाली, कमज़ोरी और अकालमृत्यु उनकी चिरसंगिनी हैं। वे ऐसे बन्दी हैं जिनकी बेडियों की झनकार से तमाम सृष्टि वाले काँप रहे हैं। कल-कारखाने वाले मज़दूरों के जीवन से खिलवाड़ करते है। पण्डित जवाहरलाल मज़दूरों की परेशानी से परेशान हैं--उनके दुख से दुखी हैं। वे चाहते है मज़दूर ज़्यादा तनख्वाह पायें, अच्छे हवादार मकानो में रहें, एक शरीफ़ आदमी की ज़िन्दगी बसर करें और योग्यता के बल पर ऊचे-से ऊंचे पद पर पहुंच सकें। आज मजदूरो के वेतन अनेक विभागों में बहुत ही कम हैं। जब से कांग्रेस का मन्त्रिमण्डल क़ायम हुआ है, मज़दूर कुछ-कुछ जागृत होने लगे हैं। हमारा कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल इस चेष्टा में है कि मज़दूरों के जीवन की कठिनाइयाँ कम हों और उनके कष्टमय जीवन में सुख और सौरभ की फुलवारी खिले। मज़दूर भाइयों को कुछ दिनों के अन्दर उनके छिने हुए हक़ वापस मिलेंगे--ऐसा हमारा विश्वास है।

* * *

नवां परिच्छेद !

— मुकम्मिल आज़ादी की ओर —

सन् १९२९ का साल, जवाहरलाल जी के राजनीतिक जीवन में एक ख़ास स्थान रखता है। इसी साल मे पण्डित जी ने नागपुर की अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का सभापतित्व किया था और इसी साल आपको राष्ट्रीय महासभा के तख़्त पर बिठाला गया। लाहौर कांग्रेस का वह अधिवेशन कुछ साधारण अधिवेशन नही था। गत वर्ष की कलकत्ते कांग्रेस के निश्चय के अनुसार कांग्रेस के। पूर्ण आज़ादी के मार्ग पर कदम बढ़ाना था।

* * *

लाहौर के मशहूर अनारकली मुहल्ले से सभापति जवाहरलाल का जुलूस बड़ी आनोबान और शान से गुजर रहा था। लम्बे लम्बे क़द्दावर पंजाबियों ने अपने प्रेसीडेण्ट के स्वागत में पलकें बिछा दी थी और सारे देश को दरसा दिया था कि उनके ऊंचे क़द के शरीरों मे उन्नत आत्मा का भी निवास है। हजारहा पंजाबिन हूरें क़तारें बांधे, मुस्कराते, रंग-बिरंगी साड़ियो से महफ़िल को रंगीन बनाते, स्वागत-गान गा रही थी मानो उनका अपना राजा बहुत दिनों बाद नगर मे वापस आया हो। आकाश से, ऊंची-ऊंची अटारियो से, खिड़कियों से, झरोखों से, फूलों की वर्षा हो रही थी जिसकी एक एक पखड़ी आनन्द और

आशीश का पैग़ाम लेकर आती थी। वहीं पर, एक ऊंचे महल से मकान की छत पर, पण्डित मोतीलाल, जवाहरलाल की मां, धर्मपत्नी और बहनों के साथ अपने बेटे का अपूर्व सम्मान देखने के लिये खडे थे। ज्योंही जवाहरलाल की सवारी उस मकान के नीचे से गुज़री कि ऊपर से कमला जी और बहन विजयलक्ष्मी ने अञ्जलि में भर भर कर बेले और जुही की कलियों की वर्षा की। और नीचे से, घोडे की पीठ पर से, जवाहरलाल ने बूढ़े माता पिता को फौजी सलाम दी। लाखो की भीड उस अनुपम दृश्य को देखने के लिये एकटक खडी थी। पिता ने, पुत्र को अपने जीवन-काल में ही उरूजकी सबसे ऊंची चोटी पर बैठते देखा—मोतीलाल जी ने स्वय, कांग्रेस का कांटों का ताज, अपने शीश से उतार, अपने पुत्र के शीश पर चढा दिया। सब कुछ देश को अर्पण करने के बाद मोतीलाल अपने पुत्र को भी राष्ट्र के हाथों सौंपते हुए यह कह रहे थे कि, तेरे हाथों मे कांग्रेस का तिरंगा झंडा कभी नीचा न होने पाव और जवाहरलाल ने उस हुकम को सर-माथे पर ले लिया। सारा कांग्रेस-मण्डप विजय के जय जय-कार से गूंज उठा। वह एक ऐतिहासिक घटना थी जिसे इति-हासकार तवारीख के पन्नो में लिखेगा। सयोग की बात है कि, जिस क्षण पुराना साल, नये वर्ष के लिये अपना आसन खाली कर रहा था, उसी लमहे मे--३१ वीं दिसम्बर के ठीक १२ बजे रात को कांग्रेस ने पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास किया। जवाहरलाल अपने राष्ट्र का कायाकल्प करने के जिस महान् यत्न मे लगे है, उसमें उन्होंने उस आधी रात को एक

लम्बा डग भरा था। लाहौर में पहली बार सरहद के बहादुर पठानों का जत्था खां अब्दुल गफ़्फ़ार खां की लीडरी में कांग्रेस में शिरकत करने आया था। मुकम्मिल आज़ादी का प्रस्ताव पास होते न होते स्वतन्त्रता के इन दीवानों का मनमयूर नाच उठा। उन्होंने नाच-नाच कर, गा-गा कर, भारत की खोई हुई भाग्य-लक्ष्मी को रिझाया। 'जवाहरलाल जिन्दाबाद' के नारे लग रहे थे। जवाहरलाल फड़क उठे। वे उस दृश्य को देख कर इतने तन्मय होगये कि, उन्हीं के साथ उस मरदाने डान्स में वे भी शामिल होगये। जिन्होंने उस दृश्य को देखा है वे बतलाते है कि, जवाहरलाल उस मंडली मे आज़ादी के फ़िरिश्ते से जँचते थे। तब से पठान, अपने ही समान पुरजोश नवजवान को अपना रहनुमा पाकर जवाहरलाल को बहुत प्यार करने लगे हैं और आम लोगों के मनों में यह धारणा पैठ गई है कि हो न हो जवाहरलाल भारतमाता को आज़ाद करने के लिये ही जन्मे हैं।

सन १९२९ में जबसे कांग्रेस में, पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास हुआ है तबसे कांग्रेस के कन्धों पर बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी आगई है। उसी वक्त से देश-विदेश में यह हलचल मची है कि, बूढ़े भारत ने भी ,गुलामी दूर करने के लिए करवट बदली है। चूंकि यह महत्वपूर्ण प्रस्ताव प० जवाहरलाल की सदारत में पास हुआ है और उन्हीं की प्रेरणा का फल है, अतएव उन्होंने अपनी ज़िम्मेदारी सबसे ज्यादा महसूस की है और पूर्ण आज़ादी के असली माने क्या है, इसे जनता के कण्ठ तले उतारने में उन्होंने

कोई कसर नहीं रख छोड़ी है। चूंकि प्रस्ताव आज़ादी के दीवानों के लिए खास महत्व रखता है इसलिए वह मूल में ही नीचे दिया जारहा है —

"हम भारतीय प्रजाजन भी अन्य राष्ट्रों की भाँति अपना यह जन्म-सिद्ध अधिकार मानते हैं कि हम स्वतन्त्र होकर रहे, अपनी मेहनत का फल हम खुद भोगें और हमे जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक सुविधायें मिलें जिससे हमें भी विकास का पूरा-पूरा मौक़ा मिले। हम यह भी मानते हैं कि अगर कोई सरकार ये अधिकार छीन लेती है और प्रजा को सताती है तो प्रजा को उस सरकार को बदल देने या मिटा देने का भी हक है। हिन्दुस्तान की अंग्रेज़ी सरकार ने हिन्दुस्तानियों की स्वतन्त्रता का ही अपहरण नहीं किया है, वल्कि उसका आधार भी ग़रीबों के रक्तशोषण पर है और उसने आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से हिन्दुस्तान का नाश कर दिया है। इसलिए हमारा विश्वास है कि हिन्दुस्तान को अंग्रेज़ों से संबंध विच्छेद करके पूर्ण स्वराज्य या मुकम्मिल आज़ादी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

"भारत की आर्थिक बरबादी हो चुकी है। जनता की आमदनी को देखते हुए उससे वेहिसाब कर वसूल किया जाता है। हमारी औसत दैनिक आय सात पैसे है और हमसे जो भारी कर लिये जाते है उनका २० फीसदी किसानों से लगान के रूप मे और ३ फी सदी ग़रीबों से नमक कर के रूप मे वसूल किया जाता है।

"हाथ-कताई आदि ग्राम-उद्योग नष्ट कर दिये गये हैं। इससे साल में कम-से-कम चार महीने किसान लोग बेकार रहते है। हाथ की कारीगरी नष्ट हो जाने से उनकी बुद्धि भी मन्द हो गई है और जो उद्योग इस प्रकार नष्ट कर दिये गये है उनकी जगह दूसरे देशों की भांति कोई नये उद्योग जारी भी नहीं किये गये हैं।

"चुङ्गी और सिक्के की व्यवस्था इस प्रकार की गई है कि, उससे किसानों का भार और भी बढ गया। हमारे देश मे बाहर का माल अधिकतर अंग्रेजी कारखानो से आता है। चुङ्गी के महसूल मे अंग्रेजी माल के साथ साफ तौर पर पक्षपात होता है। इसकी आय का उपयोग गरीबो का बोझा हलका करने मे नहीं, बल्कि एक अत्यन्त अपव्ययी शासन को कायम रखने मे किया जाता है। विनिमय की दर भी ऐसे मनमाने तरीके से निश्चित की गई है कि जिससे देश का करोडों रुपया बाहर चला जाता है।

"राजनैतिक दृष्टि से हिन्दुस्तान का दर्जा जितना अंग्रेज़ों के जमाने मे घटा है उतना पहले कभी नहीं घटा था। किसी भी सुधार योजना से जनता के हाथ मे असली राजनैतिक सत्ता नही आई। हमारे बडे से बडे आदमी को विदेशी सत्ता के सामने सिर झुकाना पड़ता है। अपनी राय आजादी से जाहिर करने और आजादी से मिलने-जुलने के हमारे हक़ छीन लिये गये हैं और हमारे बहुत-से देशवासी निर्वासित कर दिये गये हैं। हमारी सारी शासन की प्रतिभा मारी गई है और सर्व-

साधारण को गांवों के छोटे-छोटे ओहदों और मुन्शीगीरी से सन्तोष करना पड़ता है।

"संस्कृति के लिहाज से शिक्षा प्रणाली ने हमारी जड ही काट दी और हमे जो तालीम दी जाती है उससे हम अपनी गुलामी की जंजीरों को ही प्यार करने लगे है।"

"आध्यात्मिक दृष्टि से, हमारे हथियार जबरदस्ती छीन कर हमे नामर्द बना दिया गया। विदेशी सेना हमारी छाती पर सदा मौजूद रहती है। उसने हमारी मुकाबिले की भावना को बड़ी बुरी तरह से कुचल दिया है। उसने हमारे दिलों मे यह बात बिठा दी है कि हम न अपना घर सम्हाल सकते है और न विदेशी हमलो से देश की रक्षा कर सकते है। इतना ही नही, चोर, डाकू और बदमाशो के हमलो से भी हम अपने बाल-बच्चों और जान माल को नही बचा सकते। जिस शासन ने हमारे देश का इस तरह सर्वनाश किया है, उसके अधीन रहना हमारी राय मे मनुष्य और ईश्वर दोनो के प्रति जुर्म है। किन्तु हम यह भी मानते है कि हमे हिंसा के द्वारा स्वतन्त्रता नहीं मिलेगी। इसलिए हम ब्रिटिश सरकार से यथा सभव स्वेच्छा पूर्वक किसी भी प्रकार का सहयोग न करने की तैयारी करेंगे और सविनय अवज्ञा और करबन्दी तक के साज सजायेंगे। हमारा पक्का विश्वास है कि अगर हम राजी-राजी सहायता देना और उत्तेजना मिलने पर भी हिंसा किये बगैर कर देना बन्द कर सके तो इस अमानुषी राज्य का नाश निश्चित है। इसलिए हम शपथपूर्वक सकल्प करते है कि पूर्ण स्वराज्य की स्थापना के

लिए कांग्रेस समय-समय पर जो आज्ञायें देगी, उनका हम पालन करते रहेंगे।"

* * *

पं० जवाहरलाल का कथन है कि उस दिन से प्रत्येक कांग्रेस मैन के कंधे पर जो ज़िम्मेदारी आ गई है वह लिखने की नहीं प्रत्युत समझने की चीज़ है। उस प्रस्ताव को पास करके हमने तब तक के लिए जब तक हम गुलाम हैं, यह शपथ ली है कि हम इस कार्य की सिद्धि के लिए बड़ी से बडी कुरबानी करते नहीं हिचकेंगे। तब तक के लिए हमने ऐश-आराम को प्रणाम कर लिया है—सुख और शान्ति को विदा कर दिया है। हमारे सामने--हमारे इष्ट-मित्र और कुटुम्ब के सामने--कष्ट-सहन का मार्ग है, जिस पर पूरी जांफिशानी और जिम्मेदारी के साथ चलकर हमें देश का नेतृत्व करना है। लोग भूल न जांय कि, आज़ादी प्राप्त करना और वह भी अंग्रेजों के साम्राज्यवादी कठोर हाथों से, कुछ आसान काम नहीं है। जितनी ही बड़ी चीज़ हासिल करनी है उतनी ही बडी कुरबानी उसके लिए आवश्यक है। प्रेमी को अपने दुख में ही सच्चे सुख का दर्शन होता है, अतएव लोग दुःखों से घबरायें नहीं। गुलाब के सुन्दर फूल को प्राप्त करने के लिए कांटो की झांडियों से झगडना अनिवार्य है। हिन्दू जिस भक्ति से गगा स्नान करते हैं, मुसलमान जिस भावना से काबा की तरफ़ मुंह करके नमाज पढ़ते हैं, सिक्ख जिस धार्मिक भाव से ग्रन्थ साहब का अवलोकन करते हैं वही स्पिरिट—वही नुक्तये नज़र-स्वाधीनता

देवी की इबादत के लिये ज़रूरी है। भारत माता के मन्दिर में फ़िरक़ेदाराना बातचीत की गुञ्जायश नहीं है—वहां का वायु-मण्डल विशाल है। जवाहरलाल स्वाधीनता देवी की पूजा के लिए ताबड़तोड़ चले जा रहे हैं। उनके हाथों में पूजन की सामग्री से भरा हुआ थाल है। हम सब उनकी आरती उतारें-उनके दीर्घजीवन के लिए प्रार्थना करें—उनके महान् कार्य में सहायता दें। जिससे जो हो सके वह पूजन की थाली में डाल दें। कांग्रेस के कार्य में धन दे, जन दे, मन दे और जिससे यह न हो सके वह रास्ता छोड़ अलग हट कर खड़ा होजाय। आज़ादी के मार्ग का रोड़ा बनना किसी भी भारतीय को शोभा नहीं देगा। आज गांधी जी और जवाहरलाल जी हमारे बीच में विराजमान हैं, इनकी मौजूदगी में जो कार्य आसानी से हो सकेगा वह इनके बाद मुश्किल से पूरा होगा।

* * *

सन् १९३० के आन्दोलन का दृश्य जीवन भर नहीं भुलाया जा सकता। मन में एक उमंग थी, तन में एक जोश था। भारतीय जन-समुद्र में आज़ादी का ज्वार-भाटा आया था।

कांग्रेस ने, आन्दोलन के सञ्चालन का भार महात्मा गांधी के तपःपूत कन्धों पर रक्खा। उन्होंने देश की ठीक-ठीक शक्ति का अन्दाज़ा पाने के लिए २६ वीं जनवरी का दिन तै किया जिस दिन भारत के निवासियों को शहर-शहर, क़स्बे क़स्बे और गांव-गांव में स्वतन्त्रता की शपथ लेनी थी।

वह दिन आया और ख़ूब आया। उस दिन अपने इस विशाल देश के कोने-कोने में मुकम्मिल आजादी वाला प्रस्ताव पढ़ा गया और जनता ने अपने कोटि-कोटि कण्ठकंठों से उस प्रस्ताव के शब्द-शब्द को दोहरा कर अपनी मंजूरी का वचन दे दिया। उस दिन, हिन्दोस्तान के निवासियों को ग़ुलामी से दूर होने का पहली बार सामूहिक ख्याल हुआ था।

गांधी जी ने, सत्य के आग्रह से, असहयोग-आन्दोलन का श्रीगणेश करते समय भारतीय जनता को बतलाया कि, यह कष्ट सहने का मार्ग काफ़ी लम्बा-चौड़ा होगा। 'शीश उतारै भुँइ धरै-तापे राखै पाँव, दास कबीरा यों कहै-ऐसा होय तो आव--गांधी जी ने आन्दोलन की व्याख्या करते हुए बतलाया कि, सत्याग्रही सैनिकों को मनसा-वाचा-कर्मणा अहिंसात्मक बनना होगा। हिंसा के लिए इस पवित्र आन्दोलन में गुञ्जायश नहीं होगी। इक्के-दुक्के अंग्रेज हाकिमों को घायल करने या गोली से मार देने में स्वराज्य हासिल नही हो सकता, क्योंकि हमारी लड़ाई जिस राजतन्त्र से है, उसमें एक के बाद दूसरा व्यक्ति आता रहता है। किसी भी बड़े से बड़े व्यक्ति के नाश के साथ अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद का विनाश नही हो सकेगा। अतएव हमें तो इस साम्राज्यवाद की खबर लेनी है। इस भयकर जुए को जो हमारी गर्दन पर भारी पत्थर के समान लटका हुआ है, हटाना है। और इसके हटाने का, अपनी वर्तमान स्थिति में, एक ही तरीक़ा है और वह गांधी जी का सत्याग्रह है। गांधी जी के

आन्दोलन की नींव सत्य, अहिंसा, त्याग, प्रेम और एकता पर है, जिसकी भित्ति पर कांग्रेस की इतनी बड़ी क़िलेबन्दी हुई है।

१९३० के स्वाधीनता-आन्दोलन की शुरुआत नमक-कानून के भंग से हुई थी। नमक जैसी जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी वस्तु पर हमारी औलिया सरकार ने टिकस लगा रक्खा था। समुद्र के किनारे वाले गाँवों मे जहाँ किनारे-किनारे लखूखा मन नमक जमा रहता है, गाँव वालो के लिए नमक का एक टुकडा उठाना हराम था। अन्य गांवों मे जहाँ की मिट्टी लुनीली है, जहाँ पर लोग मिट्टी से नमक निकाल कर बेकारी दूर कर सकते है वहाँ भी नमक बना सकने की मुमानियत थी। यह तो कुछ ऐसी बात हुई जैसे सूर्य की रोशनी और हवा की ताज़गी पर चुङ्गी लगी हुई हो। गांधी जी ने कहा कि, यह परिस्थिति नाक़ाबिले-बरदाश्त है और जनता को नमक-क़ानून भंग करके उसकी धज्जियाँ उड़ा देनी चाहिये। जनता ने गांधी जी के मन्त्र को समझ कर उस पर अमल किया। देश के कोने-कोने में लखूखा जगहों में नमक बना, नमक बिका और नमक समुद्र-तटों से उठाया गया। गांधी जी ने आन्दोलन को शुरू करने से पहले सरकार वालों से कहा था कि, देश की गरीबी का ख़याल करके नमक जैसी ज़रूरी चीज पर से चुङ्गी हटा दो। पर सरकारी लोगों ने इस बूढ़े फकीर की बात को न माना। नमक की बात मान लेने से नित्य नई-नई बातों के सामने आने का खटका था, इसलिए गांधी जी का काफ़िला, 'वैष्णव जन तो तेणे कहिये जे

पीर पराई जाणे रे' का स्वर्गीय गान गाते डांडी के समुद्र-तट की ओर चल पड़ा।

उस वक्त देश बड़ी मुसीबत में था। मन्दी का ज़माना था। अनाज और कपास का भाव बेहद सस्ता था। किसान को खेत पर के बीज और मेहनत के दाम भी वापस नहीं मिलते थे। देश के उद्योग-धन्धे नष्ट हो रहे थे। विदेशों से आने वाले माल सस्ते पड़ते और देश के कल-कारखाने घाटे से चलते। ब्रिटिश सरकार की मुद्रा नीति के कारण किसान चौपट हो रहे थे। मुद्रा-नीति को हम थोड़े में समझाने का प्रयत्न करते हैं। एक रुपये में सोलह आने होते है। एक आने को अंग्रेज़ी में एक पेंस कहते हैं। पहले, एक रुपये के बदले में विलायती १६ पेंस हमें मिला करते थे, पर अंग्रेज़ सरकार ने इंगलैंड की तिजारत को बढ़ाने के लिए एक रुपये में १८ पेंस देना शुरू कर दिये। यह देना-लेना सोने और चाँदी के सिक्कों मे तो होता नहीं, कागज़ी नोटों में, लिखा-पढ़ी में होता है, अतएव अंग्रेज़ सरकार को उससे कुछ घाटा नहीं। जहां एक रुपये में पहले १६ पेंस के मूल्य का माल आता था वहाँ एक रुपये मे १८ पेंस के मूल्य का माल आने लगा। यानी पहले जितना माल एक रुपये में आजाता था उतना ही माल अब चौदह आने में आने लगा अर्थात् इंगलैंड का माल दो आने रुपया सस्ता पड़ने लगा। उसके खिलाफ़ जितना कच्चा माल यहां से इंगलैंड जाता उसमें दो आने रुपये का घाटा पड़ता, क्योंकि भुगतान अंग्रेज़ी सिक्के मे होता—एक रुपया पाकर १८ पेंस की

क़ीमत का माल इंगलैंड रवाना करना पड़ता। कहने का मतलब यह कि, देशी रुपया विलायती सिक्के की दुम में इस तरह बांध दिया गया कि, विलायत की बनी हुई चीज़ें लेने में सस्ती पड़ने लगीं और कच्ची चीज़ों का बेचना नुक़सान बतलाने लगा। यही परिस्थिति आज भी बनी हुई है। पर धन्यवाद है १९३० के आन्दोलन को जिसके कारण लोगों के अन्दर स्वदेशी चीज़ों के खरीदने की भावना बढ़ी है और भावना के कारण, विलायती माल सस्ता पड़ते हुये भी, ठंडा पड़ गया है। उपरोक्त कारणों से ही देश मे बेकारी और भुखमरी बढ़ रही थी। खेतों में आमदनी कम होती पर सरकारी लगान की दर बढ़ती ही जाती। सारे वायुमंडल मे एक चीख थी। जनता की वेदना आह बनकर उसके दिलों से निकल रही थी। उसकी आवाज़ क्या थी मानो लौ की लपट थी। पेट की धधकती ज्वाला लौ की लपटें बन कर क्रान्ति-क्रान्ति पुकार रही थी। वह आंदोलन नहीं था—क्रांति की शुरुआत थी—पीड़ितों की पुकार थी। उस आन्दोलन को दमन करने में सरकार ने कोई बात न उठा रक्खी। पर ज्यों-ज्यों दमन तेज़ होता गया, त्यों-त्यों आन्दोलन का रूप उग्र होता गया। विदेशी कपड़े का बहिष्कार हुआ। ताड़ी और शराब का भीषण बायकाट हुआ। ताड़ी की जिन दूकानों पर चौदह हजार की बिक्री थी उन पर चार हज़ार की आमदनी होनी कठिन होगई। इसके बाद लगानबन्दी हुई—लम्बे लम्बे जुरमाने हुए—कुर्कियां हुई—ज़ब्तियां हुई। लाखों देशभक्तों को कारागार की चक्की में पीस कर उनकी उमंगों को कुचलने की व्यवस्था रची

गई, पर सब व्यर्थ। लोगों की आत्मा में विद्रोहानल सुलग चुकी थी। वे पुकार रहे थे—बढ़े चलो। सरकारी चाकर कूकुर और हिमायतदार अपने आक़ाओं को .खुश करने के लिए, ग़रीबों का .खून चूस रहे थे, गांवों के नम्बरदार और जिलेदार किसानों की इज़्ज़त लूट रहे थे और अंग्रेज़ ओहदेदार दिल बहलाने के लिए हमारे जीवन से खिलवाड़ कर रहे थे। पर, लोगों की ज़बानों पर था इन्क़लाब और कर्मों मे थी क्रांति, अतएव दीनों की हर सांस पुकार रही थी—बढ़े चलो, पद्दलितों के प्राण तड़प तड़प कर पुकार रहे थे—आगे बढ़े चलो। और हम बढ़ रहे थे—बड़े नाज़ोन्दाज़ के साथ—बड़े गुमान के साथ—बड़े सम्मान के साथ। ऐसा लगता था कि, भारत के आंगन में आंधी और तूफान के झंझावात, ज़ुल्म के चिराग को गुल करके ही रहेंगे। पुरुष समाज का नेतृत्व कर रहे थे राष्ट्रपति जवाहरलाल और महिला-समाज का संचालन कर रही थीं कमला जी। श्रीमती कमला नेहरू अपने पति की सच्ची अनुगामिनी थीं। वे मर्दाना भेष धारण कर ताडी और शराब की दूकानों पर पिकेटिंग करने जातीं। कांग्रेस-कार्य के लिये वे धन इकट्ठा करतीं, स्वयंसेवकों की भरती करतीं, विलायती कपड़े के दूकानदारों को समझातीं और भारत की भाग्यलक्ष्मी की तरह वे प्रांत भर में डोल डोल कर उत्साह और जागृति का सन्देश सुनातीं। जवाहरलाल जी ने जो खोजा था, कमला जी ने वह पाया था। पति के काम में सहारा बन कर रहना उन्होंने अपने जीवन का धर्म बना लिया था, धर्म एक पुरानी कथा इस वक्त बरबस याद हो आई है। महाराज दशरथ एक बार दैत्यों से युद्ध

करने गये थे। उनकी प्रियतमा रानी कैकेयी जो एक प्रसिद्ध वीरांगना थीं, उनके साथ ही युद्ध-भूमि पर गई थीं। महाराज दशरथ जिस वक्त दुश्मनों के साथ पूरी तरह युद्ध में उलझे हुए थे उस वक्त उनके रथ के पहिये की धुरी निकल गई। धुरीण के निकलते ही रथ का पहिया ज़मीन पर गिर जाता, और महाराज की पराजय होजाती। यह देखते ही कैकेयी ने अपनी अंगुलियां और कोमल कलाई धुरी के स्थान पर लगा दी और तब तक लगाये ही रहीं जब तक युद्ध में महाराज की विजय न होगई। कमला जी भी कुछ ऐसी ही स्त्री थीं—वे सच्चे स्त्री-धर्म—पातिव्रत धर्म—को जानती थीं। हिन्दू-समाज की बुज़दिल स्त्रियां जो घर के बच्चों और पुरुषों को देशसेवा के मैदान मे बढ़ने से सदा रोकती रहती हैं कुछ शरम खांय। उनकी कोखें तभी उजागर होंगी जब उनके जने हुए बच्चे देश की खोई हुई आज़ादी को वापस लायेंगे। और यह तभी सम्भव होगा जब उनके कार्य और उनके विचार कमला भाभी के समान देशभक्ति से पूर्ण होंगे। लेखक के सौभाग्य से कमला जी एक बार कानपुर पधारी थीं और उसके झोपड़े में ठहरी थीं। उन्हें इतने निकट से देखने का वह पहला और अन्तिम अवसर था। बाल कटे हुए थे, चेहरे पर भोलापन था, शरीर तपस्विनी सीता के समान कृश और जर्जर हो रहा था। कमरे में दाखिल होते ही वे एक मोटे तकिये की पीठ पर ऐसी बेतक़ल्लुफ़ी से बैठ गईं जैसे यह उनका अपना ही घर हो और आन्दोलन के सञ्चालन की बातें करने लगीं। उन दिनों सभी बड़े बड़े नेता

जेल जा चुके थे और वे खुद प्रान्त का नेतृत्व कर रही थीं। यद्यपि वे साड़ी पहिने थीं पर एक कमसिन कुमार के समान जंचती थीं। कार्यकर्ताओं से सलाह-मशविरा करने के बाद वे मेरी बूढ़ी मां के समीप जा बैठी जैसे अपनी सगी लडकी माता से सट कर बैठ जाय। मां एक कुन्द चाकू से तरकारी कतर रही थीं। कमला जी एक भोथरे चक्कू की बेंट को दाहिने हाथ में लेकर बोलीं कि, मैं भी आलू बनाऊंगी। इतने में घर की और स्त्रियां उनके आस-पास आगईं और दुलार से चाकू छीनते हुए बोलीं—यह तो आपकी मां का घर है—ससुराल जब जाइयेगा तब नोन तेल की फ़िकर कीजियेगा। इस पर कमला जी हंस पड़ीं, और खूब खुशी खुशी सबके बीच में उठीं बैठीं। चन्द घंटों के अन्दर मानो घर भर उनके हाथों बिक गया था, वे हममें से एक हो गई थीं। जिस अशुभ दिन उनकी मृत्यु की खबर कानपुर आई, मेरी बृद्धा मां बहुत रोईं। उनके उस आगमन की स्मृति उनके मन में जागृत हो उठी और ठाकुर जी के आगे सफ़ेद बालों से ढके हुए शीश को सिंहासन पर पटकते हुए बोलीं कि, "तुमने यह क्या किया ठाकुर जी मेरे आने के दिन थे सो उसे क्यों बुला लिया?" जवाहरलाल जी को कमला जी पर कितना नाज़ रहा होगा यह तो उनका दिल ही जान सकता है। कमला जी का त्याग कुछ मामूली त्याग नहीं था। जवाहर-लाल जेल के अन्दर बैठे बैठे जब कमला जी के धुआंधार कार्य-क्रम की रिपोर्टें अखबारों में पढ़ते होंगे या आने-जाने वाले साथियों से सुनते होंगे, तो उनकी छाती गर्व से फूली न समाती होगी।

हां, तो फिर आन्दोलन की प्रगति से सरकार परेशान हो उठी। उत्तर में खान अब्दुलगफ़्फ़ार खां के अधिनायकत्व में सरहदी पठान आफ़त मचाये हुए थे। वे नंगे मालिक के पैग़ामों के अनुसार आज़ादी की अहिंसात्मक लड़ाई में अपनी अमूल्य आहुति चढ़ा रहे थे। उन्हें गोलियों से छेदा गया—तोपों के मोहरों से बांध-बांध कर, गोलों से उड़ाया गया पर पठान बच्चे डिगाये न डिगे। और दक्षिण में, बम्बई और गुजरात के लोगों ने आन्दोलन की बेलि को अपने ख़ून से सींच-सींच कर पनपाया और बढ़ाया था। सरकार का ख़याल था कि, चन्द महीनों में यह आन्दोलन ठण्डा पड़ जायगा, पर, ज्यों-ज्यों दवा की गई त्यों-त्यों मर्ज़ बढ़ता ही गया। जो चिनगारी गांधी जी की आशीश ले कर साबरमती से चली थी वह इलाहाबाद में जवाहरलाल जी की मशाल को देदीप्त करके, सारे देश में प्रज्ज्व-लित हो उठी। क़ानून पर क़ानून टूटते गये। सरकार ने आर्डी-नेन्स लगाये, पर जनमत ने भुट्टों के समान उनके टुकडे-टुकड़े कर डाले। ता० ५वी मई को महात्मा जी गिरफ्तार कर लिये गये थे। महात्मा जी का शरीर यद्यपि यरवदा-जेल के अन्दर था पर, उनका प्रकाश, उनकी आत्मा का बल देश के प्रांगण में फैला हुआ था। जब नेता न रहे तब जनता वाले आगे बढ़े। कोई जगह ख़ाली नहीं रहने पाती थी। व्यक्ति आवें या जायँ, पर कांग्रेस की शक्ति अक्षय है। जब दमन से नतीजा न निकला तब सरकार ने राजनीतिक मायाजाल फैलाया। सुलह, गवर्नमेंट और कांग्रेस के बीच सुलह, की बातें शुरू हुईं। गवर्नमेंट ने इस

कार्य के लिए नर्म दल के दो मशहूर नेताओं को चुना—अपने और कांग्रेस के बीच समझौता कराने के लिए श्री० जयकर और तेजबहादुर सप्रू को गवर्नमेण्ट ने मध्यस्थ बनाया। श्री० जयकर पहले कांग्रेस के प्रमुख नेता रह चुके हैं—बम्बई के नामी-गरामी बैरिस्टर हैं और एक देशभक्त सत्पुरुष हैं—वे आज कल भारत की सबसे बड़ी अदालत के जज पद पर आसीन हैं। सर तेज अपनी क़ानूनी योग्यता, विचार-शक्ति और शासन-विधान के पाण्डित्यपूर्ण ज्ञान के लिए देशव्यापी प्रसिद्धि हासिल कर चुके हैं—वे एक ईमानदार राजनीतिज्ञ हैं जो अब भी अंग्रेज़ सरकार की सदाशयता में भरोसा रखते हैं। सरकार को इन दोनों से बढ़ कर सुलह कराने वाले नुमाइन्दे देश में नहीं मिल सकते थे। ये दोनों सज्जन नैनी के जेलख़ाने में पं० जवाहरलाल और पं० मोतीलाल से मिले। जवाहरलाल जी कहते हैं कि, ये लोग किस बात की सुलह कराने आये थे इसे मैं आख़िर तक न समझ पाया। सरकार से समझौता करने के मानी थे कि या तो पूर्ण स्वराज्य हमें हासिल हो गया या हमने मुकम्मिल आज़ादी के झण्डे को नीचे झुका दिया। पर, बात यह थी कि, सरकार उन दिनों घबराई हुई थी। लन्दन में गोलमेज़ कान्फ़रेन्स की ढफली बजाई जा रही थी, जिसमें शामिल होने के लिए सरकार ने कुछ राजों, कुछ ज़मींदारों, कुछ सर और रायबहादुरों, कुछ अमीर हुक्कामों, कुछ स्वदेशी ग़द्दारों और अनेक फ़िरक़ापरस्त जी-हुज़ूरों की फ़ौज़ सरकारी ख़र्चे से विलायत भेज रक्खी थी ये लोग, पालतू बन्दर के समान अपने मदारी के इशारों पर तरह तरह के

नाच, नाच रहे थे। ज्योंही उधर से चुटकियां बजती और ताग‌धिनाधिन की आवाजें लगतीं त्यों ही ये कुलाचें भरने लगते, इनकी नटखटियां शुरू हो जाती। पर ये लोग भी लन्दन में जब अपने देशवासियों पर लाठी चार्ज और गोलीकांड होने का हाल पढ़ते तब भारतीय होने के नाते इनके दिल से भी अफसाने निकलते। अतएव सुलह करने के नाम पर ब्रिटिश गवर्नमेंट ने वह चाल चली जिससे एक ओर तो भारतीय आन्दोलन में ठंडक आगई और दूसरी ओर गोलमेज़ कान्फ्रेंस की हसी-मज़ाक, दावतें और दिलबस्तगी चालू रही। अंग्रेज़ों की कूटनीति की यह कितनी बडी विजय थी कि हमारे महान् नेता महात्मा गांधी और जवाहरलाल जी भी उसके चक्कर में आगये और सारे देश में तत्कालीन वायसराय लार्ड इरविन की नेक-नीयती के गुण-गीत गाये जाने लगे। उन दिनों लार्ड इरविन की गणना ईसा मसीह के सच्चे बच्चों में की जाती थी और यह क़रीब क़रीब मान लिया गया था कि, वे भारतीय स्वाधीनता के हामी हैं। भारतवासी कितने भोले और राजनीति में कितने कोरे हैं—ऊपर की बातें इसकी समुचित व्याख्या कर देती हैं। हम भारतीयों में एक और भी बड़ी कमी है कि हम विरोधियों तक की मीठी बातों के लासे मे जल्दी से फस जाते हे। जिस अधिकारी ने हमदर्दी की दो बातें कह दीं, बस हमने उसको अपना हितैषी और सखा मान लिया। यों तो परस्पर के व्यवहार में भाई चारे के सम्बन्ध में यह गुण एक विशेषण का काम करता है पर आज, अब, वह सभ्यता नहीं रह गई है। हमें उस पश्चिमी सभ्यता के सम्पर्क में आना पड़ रहा है

जो कूटनीति की क़ायल है—जहाँ दिये हुए वचनों का कोई मूल्य नहीं रहता है। अतएव हम भी ग़लती करना छोड़ें—अंग्रेज़ोंके लफ़्ज़ी मायो जाल में पड़ कर अपनी मिट्टी और न ख़राब करें। अंग्रेज़ों ने भारतीयों से जब जब मधुर बातें कही हैं तब तब उन्होंने दूर की पेशबन्दियाँ की हैं। वे हमेशा पहले से दूर की कौडी फेंकते हैं जिसे हम साधारण जन नही भांप पाते। लार्ड इरविन ने उस वक्त ऐसी मुरौवत दिखलाई कि, मोतीलाल जी और जवाहरलाल जी को प्रयाग सेण्ट्रल जेल से, स्पेशल ट्रेन द्वारा यरवदा जेल (पूना) भेजा, जहां उन्होंने भारत-भाग्य-विधाता, गांधी जी को बन्द कर रक्खा था। वहीं, उसी जेल में, सरदार पटेल भी थे—देश के किसानों के हृदय-सम्राट—बारडोली-संग्राम के विजेता और गांधी जी के दाहिने हाथ वल्लभभाई पटेल जो गुजरात के बेताज के राजा थे और अपने त्याग, लगन, योग्यता, सग-ठन-शक्ति और दृढ़ता के कारण सारे देश के प्रिय हो गये थे। जेल की दीवारों के अन्दर नेताओं में परामर्श हुए और यह तय पाया गया कि, जब तक देश के सभी बडे-बडे नेता इस समस्या पर एक साथ बैठ कर विचार न करलें तब तक इसका आखिरी निर्णय नहीं किया जा सकेगा। समझौते की बातचीत के कारण आन्दोलन सुस्त हो चला था। लोग समझ रहे थे कि युद्ध का यह आखिरी परिच्छेद है। वे भूल गये कि स्वाधीनता का युद्ध इस आन्दोलन तक महदूद नही है—वह तो तब तक चलता ही रहेगा जब तक देश पर वर्तमान अत्याचारी, शोषण-कारी हुकू-

मत क़ायम है। जनता की बुद्धि भी धूप छाँह के समान है—क्षण में कुछ और क्षण में कुछ। जनता मानो आज भी नहीं समझी है कि, स्वाधीनता देवी के मन्दिर तक पहुँचने में बड़ी से बड़ी बलि चढ़ानी पड़ती है। जेलों के अन्दर जो लोग थे, वे भी समझौते का नाम सुन-सुन कर बाहर आने को मचल रहे थे। सरकार ने समझौते का थरमामीटर लगाकर यह जान लिया कि भारतीयों में सच्ची, स्वच्छ, आजादी प्राप्त करने की कितनी दम ख़म और कितनी धुन है। सरकार हम पर हसी—वह हँसी हमारे अपमान की हँसी थी हमारे उपहास की हँसी थी। उसमें एक कटुता थी। वह हँसी, हँस हँस कर हमसे कह रही थी कि "बहुत शोर सुनते थे पहलू में दिल का जो चीरा तो एक क़तरये खूँ न निकला"। एक बार का जिक्र है कि, एक पथिक अपने जीवन का रास्ता तै करते हुए जगल-जंगल घूम रहा था। एक जगह देखता क्या है, कि एक दरख्त में आग लगी है—उसके पत्ते पत्ते जल रहे हैं, पर, उस पर बैठे हुए पक्षी नही उडते। पथिक सहम कर ठहर जाता है और पक्षियों से सवाल करता है कि ऐ पक्षी!

" आग लगी इस वृक्ष में—जरन लगे सब पात।
पक्षी क्यों नहिं उडत हो—पख तुम्हारे पास॥"

इस पर पक्षी जवाब देता है —

" फल खाये इस वृक्ष के—गँदले कीन्हे पात।
आग लगी इस वृक्ष में—जरिहौं याके साथ॥ "

देशवासियों के अन्दर, देश के प्रति, ऐसी वफ़ादारी चाहिये। पर वह कहां है ? ऊपर का दोहा पढ़ने के बाद ज्यों ही पक्षी

का प्रतिबिम्ब आंखों के सामने आता है त्यों ही बेवफ़ा आशिक़ों की फ़ौज, महात्मा गांधी की जय, जवाहरलाल नेहरू की जय और भारतमाता की जय के ज़बानी नारे लगा लगा कर हमारे सपने को भंग कर देती है। गांधी जी ने हमारे इस खोखलेपन को खूब समझ लिया था और तभी उन्होंने सरकार से समझौता भी किया। सन् १९३१ की चौथी मार्च को, शाही राजधानी देहली में अंग्रेज़ी सल्तनत के प्रतिनिधि इरविन और भारतीय जनमत के लीडर गांधी जी में मुलाक़ात हुई। बहुत बातें हुई—बडी बहसें हुईं। सरकार ने गांधी जी की छोटी छोटी कई ऐसी बातें मान लीं जो उसकी राज्य-व्यवस्था पर कतई असर नही डालती थीं और गांधी जी ने उन शर्तों पर इसलिए सुलह करली कि भारत के स्त्री पुरुषों में दम-खम की बहुत कमी दीख पडी। मुकम्मिल आज़ादी प्राप्त करने तक हमें न जाने कितनी बार सुलहें करनी पडेंगी—हमारी अहिंसात्मक लडाई न जाने कितने पहलू बदलेगी, पर इसमें कोई शक नही कि हम रोज आगे बढ रहे हैं और बढते रहेंगे। यह एक दिन की बात तो है नहीं। इसमें तो हम सीमेण्ट की तरह खप जायँगे और नीव को पुख्ता बनाते जायँगे। जुल्मों से झुलसे हुए भारत के जीवन उपवन में गांधी और जवाहरलाल के युग-प्रवर्तक हाथ ज़रूर मौसमे बहार लायेंगे। आज तो हमारी आहो की भट्टी सुलग रही है पर

" आहे मज़लूम गुल करेगी उसे—
—जुल्म का कब चिराग़ जलता है "

* * *

उस वक्त की, उस अस्थायी सुलह का नतीजा यह हुआ कि लोगों ने अपनी क़ूवत को समझा--अपने लीडरों के बड़प्पन को समझा जिसने इतने बड़े ब्रिटिश राज्य का शीश भारत के असंगठित लोगों द्वारा झुकवा लिया। उस वक्त, लाखों देश-भक्तों का क़ाफ़िला, क्रान्ति के गीत गाते—जेलों के अन्दर से निकला था। और जिस दिन, जिस क्षण, हम संगठित, समझदार और एकता के पुजारी बन जायेंगे उस दिन भारत से ब्रिटिश राज्य का—उस ब्रटिश राज्य का जिसके विनाश के लक्षण दीख पड़ने लगे हैं—हमेशा के लिए अंत हो जायगा।

दसवां परिच्छेद !

— अंग्रेजी सरकार की कूटनीति —

गवर्नमेंट और कांग्रेस के बीच जो समझौता हुआ था उसके आधार पर महात्मा गांधी को, कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में लंदन की गोलमेज़ कान्फ्रेन्स में जाना पडा। भारत सरकार ने, सब भांति उन्हे भरोसा दिला दिया था कि, आपके वापस आने तक देश की राजनैतिक परिस्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होने पायेगा और समझौते के दृष्टिकोण से ही मतभेद की बातों को सुलझा लिया जायगा।

उस वक्त लार्ड इरविन--वह ईसामसीह के नुमायन्दे बडे लाट साहब--अपना काम पूरा करके भारत से विदा हो चुके थे और उनके स्थान पर लार्ड विलिंगडन भारत के वायसराय नियुक्त हुये थे। भारत के लोगो को जानना चाहिये कि, भारत का शासन-चक्र ये वायसराय गण नही चलाया करते--ये तो महेज़ उस नीति और कार्य-क्रम को अमली अजाम देते है जिसे इंगलैंड में बैठे हुए शासक गण तै करने के बाद इनके पास भेज देते हैं। इगलैंड से वक्तन् फवक्तन्, देश, काल और पात्र के अनुसार जब जैसी ज़रूरत होती है तब तैसे, उसी रग के वायसराय भेजे जाते हैं। सुलह कराने के लिए लार्ड इरविन उपयुक्त थे--दमन का चक्र चलाने के लिए लार्ड वेलिंगडन ला

मिसाल साबित हुए । उधर गांधी जी की पीठ मुड़ी इधर इन महोदय ने दमन-क़ानून जारी किये। बंगाल में काला क़ानून लगाकर हज़ारहा देशभक्त युवक गिरफ्तार कर लिये गये और बगैर मुक़दमा चलाये वर्षों के लिये जेल में सड़ने को डाल दिये गये। सड़ी सड़ी सी तक़रीरों पर दफ़ा १२४ ए का प्रयोग होने लगा और नेता पर नेता गिरफ़्तार किये जाने लगे। यदि किसी एकक्रांतिकारी ने किसी अंग्रेज़ व्यक्ति पर गोला चलाया तो गांव के गांव और क़स्बे के क़स्बे रौंद कर तबाह कर डाले गये। यू० पी० में कांग्रेस वालों पर झूठे इलज़ाम लगाये गये कि वे लोग किसानों को लगान न देने के लिए भड़काते फिरते हैं। हालांकि बात उसके बिल्कुल विरुद्ध थी, समझौते की नीति के अनुसार कांग्रेस बराबर कह रही थी कि जितना जो दे सकता हो जरूर दे। पर अनाज की बेहद मंदी थी। खेतों में पैदावार भी कम हुई थी। किसानों के घरों में या तो दो-चार टूटे फूटे बर्तन थे या गोरू और उनको चारा देने की मिट्टी की नादें थीं। किसान घुन की तरह मुसीबत की चक्की में पिस रहे थे-एक तो पैदावार न होने के दैवी प्रकोप से और दूसरे अनाज के अज़हद गिरे हुये निर्ख से। कांग्रेस ने इस परिस्थिति को गवर्नमेंट के सामने रक्खा और समझाया कि किसानों का लगान ५० फ़ी सदी कम कर देना चाहिए। अपने प्रान्त में ज़मींदारी और ताल्लुक़ेदारी प्रथा का दौर दौरा है। यह फ़िरक़ा गवर्नमेंट और किसान के बीच का पैसा वसूल करके देने का एजेण्ट या दलाल है। इसे एजेन्सी और दलाली के पैसे तो मिलते ही हैं साथ

ही ऊपर की भी काफ़ी आमदनी रहती है। इस फ़िरक़े ने लगान में कमी करने के प्रस्ताव का विरोध किया और अपने आक़ाओं को समझाया कि हुजूर! हम लोग जहां तक ज़िन्दा हैं वहां तक लगान की कौड़ी-कौडी किसानों की खालों से खीच खींच कर ले आवेंगे और उनके बूंद बूंद से आपका औघट घट भरेंगे। देश के किसान बिखरे हुए, असंगठित और भय से ग्रस्त हैं। ज़मींदारों के ज़ुल्म सहते सहते उनकी कमरें टेढ़ी पड़ गई हैं। उनके खड़े खेत कटवा लिए जाते हैं। एक एक रुपये के पीछे ज़मींदारों के कारिन्दे उन्हें जूतों पीटते हैं। ताल्लुक़ेदारों के अमला और तहसीलदार ब्रह्मराक्षस की तरह गांव गांव घूम-घूम कर देश के अन्नदाता ग़रीब किसानों को सताते फिरते हैं। गवर्नमेंट जानती है कि ज़मींदार ज़ुल्मी हैं। गवर्नमेंट यह भी जानती है कि किसान मुफ़लिस और पीड़ित हैं। यदि यही दशा इंगलैंड में होती तो वहां विद्रोह उठा होता-ऐसी क्रांति हुईहोती कि उसकी आग सारे देश को भस्मीभूत कर देती, पर यह तो स्वतंत्र देशों की बातें हैं। हमारा देश परतन्त्र है, अतएव दासत्व का मुआवज़ा चुकाना ही चाहिये और वही हम क्षण क्षण चुका रहे हैं। अंग्रेज़, ज़मींदारी-प्रथा के रक्षक और संरक्षक हैं। ज़मींदारों, ताल्लुक़ेदारों और राजा-महाराजाओं को आप विदेशी सरकार की रीढ़ समझिये। अतएव अपनी रीढ़ को ब्रिटिश सरकार अपने हाथों कैसे तोड़े? इसे तो देश का जनमत ही तोड़ सकता है, जो ज़मींदारी प्रथा के ख़िलाफ़ विद्रोह करे--आवाज़ को बुलन्द करे। देश के अनेक प्रान्तों में

जैसे पंजाब, गुजरात, काठियावाड़, मद्रास प्रभृति प्रान्तों में ज़मींदारी-प्रथा नहीं है। वहां के किसान ज़्यादा समृद्ध और ज़्यादा सुखी हैं। यू० पी०, बिहार और बंगाल के किसान भी ज़मींदारी-प्रथा का अन्त होने पर ज़्यादा खुशहाल हो जायंगे— ऐसा विश्वास करने के काफ़ी कारण हैं। ज़मींदार लोग भी आख़िर हमारे देशवासी हैं। उनसे हम कुछ-न-कुछ देश भक्ति और ग़रीबों के प्रति हमदर्दी की उम्मीद कर ही सकते हैं। ये लोग यदि यह समझ कर कि हमने इन रियासतों की रियाया से लखूखा कमाया और पानी की तरह बहाया है, अपने हकों को सरकार को वापस कर दें या मामूली मुआवज़े ले लें तो इनकी दलाली के पैसे बीच से निकल जाने से यह राहत किसानों को मिल सकती है और सरकार से सीधा सम्बन्ध हो जाने से इनके बाग़ में सरसब्ज़ी आ सकती है, अन्यथा नहीं। पर विषय को छोड़ कर हम कहां चले आये! जवाहरलाल जी लगानबन्दी के सिलसिले में गिरफ़्तार कर लिये गये थे। उनकी गिरफ़्तारी गांधी जी के स्वदेश वापस आने के दो दिन पहले हुई थी। वे उनका स्वागत करने बम्बई जा रहे थे, परन्तु रेल पर उनकी गिरफ़्तारी हो गई और वे गांधी जी से मिल कर, देश की, सरकार की, परिस्थिति बतलाने से महरूम रह गये। कैसा मौक़ा ताक कर सरकारने तीर मारा था हमारे आन्दोलन में— यह भी समझे रहने की बात है। हमारा सेनापति देश से बाहर था। वातावरण सुलह का था। सिपाहियों का क़ाफ़िला मोरचे से हटकर सुस्ता रहा था। हम खुमारी उतार रहे थे—ऐसे

वक्त में दुश्मन ने पीछे से हमारी पीठ पर वार किया। यह सही है कि हमारी उनकी सभ्यता में फ़र्क़ है; यह भी सही है कि हमारे उनके स्वार्थों मे आकाश पाताल का अन्तर है, पर यह भी सही है कि हमने आज तक इस मौलिक मत-भेद को, सिद्ध हो जाने पर भी, समझने से बार बार इन्कार किया है। आजकल ससार की अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति_ख़राब है। प्रत्येक देश, अर्बों रुपया खर्च करके सैनिक बल बढ़ा रहा है। जर्मनी ने फिर से बड़ी बडी तैयारियां कर ली हैं और वह पुरानी हार का बदला लेने की ताक में है। इटली भी काफी शक्तिशाली हो रहा है और अंग्रेजों के खिलाफ है। जापान-ब्रिटिश साम्राज्य का वह पुराना मीत जापान-भी आज अंग्रेजों से दांव पेंच खेलने में कोर-कसर नहीं रखता। ये तीनों शक्तियां मिल जुलकर आज एक हो रहीं हैं और ब्रिटिश साम्राज्य को ललकार ललकार कर कह रहीं कि "सम्हल जाओ"। इधर ब्रिटिश सिंह अब बूढ़ा हो चला है। उसमें अब वह पुराना बल वैभव नहीं रह गया है। इस आड़े अवसर पर वह भारत की सहायता और सहानुभूति चाहता है। आजकल फिर ब्रिटिश प्रोपेगैण्डा जोरों पर है और हमें साथी, सहयोगी और मित्र कह कर सम्बोधित किया जाता है। अभी हाल ही में, भारतमन्त्री लार्ड ज़ेटलैण्ड ने फ़रमाया था कि, इंगलैण्ड और भारत की तो पार्टनरशिप है, यानी हम दोनों एक दूसरे के सुख-दुख के साझीदार हैं। सच पूछो तो आने वाला खतरा इन कठोर राजनीतिज्ञों को चिकनी-चुपड़ी बातें कहने के लिए मजबूर कर रहा है। इन्होंने कांग्रेस वालों

को घसीट-घसाट कर जो अपना मन्त्री बनाया है, सो भी इसी आगामी संकट को मद्दे-नज़र रखते हुए। आज़ादी या आज़ादी की बडी क़िस्त हासिल करने का मौक़ा हमारे लिए आन पहुंचा है। हम इतना तो मानते हैं कि, यदि हमें .गुलाम ही रहना है, तो हमारे वर्तमान मालिक औरों से अच्छे हैं, पर .गुलामी और आज़ादी में मुक़ाबला ही क्या है ? हमें तो मुकम्मिल आज़ादी चाहिये। आज़ाद कौन है—यह प्रश्न उठता है। इसका उत्तर एक प्रसिद्ध अंग्रेज़ ग्रन्थकार के शब्दों में ही दिया जा सकता है और वह यह कि, वही व्यक्ति पूर्णरूपेण स्वतन्त्र है जो स्वाधीन मुल्क का निवासी है, जो सच्चे प्रजातन्त्र राज्य का नागरिक है, जो ऐसे समाज का अंग है, जिसके क़ानूनों में ग़रीबी और अमीरी में मतभेद नहीं है, जो ऐसे आर्थिक ढाँचे का पुरज़ा है, जिसमें राष्ट्रीय हितों का संरक्षण है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को रोज़ी पैदा कर सकने की गुञ्जायश है, जहाँ मुफ़लिसी नहीं है—फटेहाली नहीं है, मायूसी नहीं है, मुर्दनी नहीं है और जहाँ प्रत्येक युवा और युवती को अपनी योग्यतानुसार ऊँचे-से-ऊँचे पद तक पहुंच सकने की खुली स्वाधीनता है। ऐसी, आकाश में विचरने वाली, शुद्ध हवा का सेवन करने वाली, पाबन्दियों से विहीन स्वाधीनता आज हमारी कहाँ है ? आज अपने देश का वातावरण अपने ही देश-भाइयों के लिए अवरोधक है—यहां साँस लेना मुश्किल है। मानो यह हिन्दोस्तान—हमारा यह विशाल देश—एक बड़ा विस्तृत जेलख़ाना है जो काँटों की चहारदीवारी से घेर रक्खा गया है। देश में विदेशी और स्वेच्छा-

चारी शासन है। जब-जब हम लाज़िमी तौर से अपने ध्येय या मक़सद पर ज़ोर देते हैं, जब-जब हम बुनियादी उसूलों को लेकर उन्नति के पथ पर आगे बढ़ते हैं तब-तब हमारे शासक हमसे भयंकर मोरचा लेते हैं, पशुबल का भीषण प्रयोग करते हैं, जातियों उप-जातियों में भेदभाव डलवाते हैं और इस तरह वे सब-कुछ करते हैं जिससे हमारे आज़ाद होने में विघ्नों का पहाड़ फट पड़े। आज हमारे आन्दोलन की रीढ़ अहिंसा है। जिस वक्त सारे संसार में हिंसा और शस्त्रीकरण का बोल बाला हो रहा है, उस वक्त हम अहिंसा के प्रयोग द्वारा संसार के युद्धों के इतिहास में नवीन परिच्छेद लिखने जा रहे हैं। कौन जाने हम सफल होंगे या नहीं ? जब तक रूस को, साम्यवादी कार्यक्रम के द्वारा ज़ारशाही से मुक्ति न मिली थी तब तक किसे क़यास था कि उस विशाल देश मे किसानों और मज़दूरों की सरकार क़ायम हो सकेगी ? दुनिया के लिए वह एक नया तजर्बा था जो सफल हो कर रहा और उसने न केवल रूस को ज़ारशाही से छुटकारा दिलाया, प्रत्युत जनता के लिए सभी चीज़ों का राष्ट्रीयकरण करके यह दरशा दिया कि इन-इन तरीक़ों से देश के दरिद्रनारायणों का शोषण बन्द हो सकता है और उनमें नई शक्ति, नई क़ूवत, लाई जा सकती है। आज समाजवादी व्यवस्था विवाद की चीज़ नहीं रही बल्कि आज वह सोवियट यूनियन के १६ करोड़ नरनारियों के जीवन में व्यवहार रूप में चरितार्थ हो रही है। वैसे ही क्या अजब है जो हमारा अहिंसात्मक आन्दोलन स्वाधीनता की लड़ाई में

विजय प्राप्त करके दुनिया के दृष्टिकोण को बदल दे। उसके लिए गांधी जी के बतलाये हुए मार्ग पर सच्चाई से चलने वाले जन-समूह चाहिये। पर, जवाहरलाल जी का ख़याल है कि, अन्तिम लक्ष्य तक यह अहिंसा हमें शायद ही पहुंचा सकेगी। वे इतना तो मानते हैं, कि अहिंसा हमें बहुत दूर तक ले जा सकती है, पर अन्त में किसी न-किसी रूप मे बल-प्रयोग करना एक लाज़िमी सी बात है। समाज के मौजूदा राष्ट्रीय और वर्गीय संघर्ष बगैर बल प्रयोग के कभी नहीं मिट सकते। हमारा अन्तिम ध्येय तो यही हो सकता है--यही होना चाहिये कि, हम ऐसे वर्ग-रहित समाज का निर्माण करें जिसमें मानव समाज को सांसारिक और सांस्कृतिक सुख मिले और सत्य, सेवा, प्रेम और नि स्वार्थ भावना की वृद्धि हो। जो इस रास्ते का रोड़ा बनेगा उसे हटाना ही होगा--हो सके तो नम्रता से, न हो सके तो बल-प्रयोग से। और इसमें कोई शक नहीं कि अक्सर बल-प्रयोग की ज़रूरत पड़ेगी, पर, उस बल-प्रयोग में क्रूरता न होनी चाहिये, घृणा के भाव न होने चाहिये, मनुष्यता का लोप न होना चाहिये, प्रत्युत होनी चाहिये निर्विकार इच्छा। यह काम मुश्किल है—पर, जो महान् कार्य हमने उठाया है उसकी प्राप्ति भी तो आसान नहीं है—रास्ता टेढ़ा-मेढ़ा है और गढ्ढों की गिनती नहीं है। आज तो हमारी दशा इतनी गिरी हुई है कि गांधी जी वायसराय से मिलने की इजाज़त चाहते हैं और वह भी नहीं मिलती। लार्ड विलिंगडन का गांधी जी से मिलने को इनकार कर देना गांधी जी का अपमान न था, बल्कि सारी

क़ौम का, सारे राष्ट्र का और हमारी मनुष्यता का अपमान था। जवाहरलाल जी जेल में थे। वे लिखते हैं कि विलायत से वापस आते ही गांधी जी ने वायसराय से मिलने की दरख़्वास्त की, पर जब वह नामंज़ूर हुई तब जैसे मेरे सीने पर चोट लगी। भारतीय राष्ट्र के एकमात्र प्रतिनिधि—भारत की कोटि-कोटि जनता के एकमात्र आराध्यदेव, की यह बेइज़्ज़ती कैसे कोई स्वाभिमानी बरदाश्त कर सकता है? पर, परिस्थिति सब-कुछ कराती है। गांधी जी भी गिरफ़्तार करके जेल में डाल दिये गये और फिर से देशवासियों पर लाठियों और बन्दूक़ों के वार हुए। फिर से आन्दोलन चला—फिर से लोग जेल गये। इलाहाबाद में पण्डित जवाहरलाल की बूढ़ी माता-श्री कान्स्टेबिलों और सारजण्टों के बेंतों से बुरी तरह पीटी गईं। वे राष्ट्रीय सप्ताह के दिन थे। ता० ६ अप्रैल से १३ अप्रैल तक देश में सदैव राष्ट्रीय सप्ताह मनाया जाता है, अतएव १६३२ में भी मनाया गया था। इलाहाबाद में, जवाहरलाल जी की माँ एक विराट जुलूस लेकर निकली जिसे पुलिस ने रोका और लाठियों से ठोंका। जिस वक्त जुलूस रोका गया, किसी पास-पड़ोस के दूकानदार ने एक कुरसी माँ जी के लिए ला दी और वे उस पर विराज गईं। पर, पुलिस के शेरों ने बुढ़िया को धक्का दे-दे कर कुरसी पर से गिरा दिया और उनके सर पर, निशाना ताक-ताक कर, लगातार बेंतों की मार दी। नतीजा यह हुआ कि उनके सर में घाव हो गये—नाक से ख़ून का परनाला बह निकला। वे बेहोश हो कर बीच सड़क पर गिर गईं और उसी बेहोशी

की हालत में उठा कर आनन्द्-भवन ले जाई गई। उन्हें जब होश हुआ, तब उनके चेहरे पर उदासी और पीड़ा के स्थान पर मुस्कराहट थी, मानो वे कह रही थीं कि आज मैंने भी अपने लड़के-लडकियों के साथ कलेजे पर की चोटें सह लीं। जवाहरलाल जी की माँ सारे देश की माँ थीं—उनकी वह बेइज़्ज़ती हमें ज़िन्दगी भर नही भूल सकेगी। वे वीर रमणी थीं—वीर पत्नी थीं, वीर माता थीं। राजरानी के ऐश्वर्य को ठुकरा कर उन्होंने नारी और मातृ-प्रेम की अमर धारा इस धरती पर बहाई थी। जो पति सुख और ऐश्वर्य का सागर था वह चौथेपन में संन्यासी बन गया, जो पुत्र उनकी आँखों का नूर था उसने जीवन में प्रवेश करते ही परिव्राजक का रूप धारण किया, जिस बहू को दीपक की बाती टारने का भी अभ्यास नहीं था उसने आत्म-आहुति दे कर अपने महान् पति के चरणों पर जीवन उत्सर्ग कर दिया। और इस सब में उनका आशीर्वाद, उनका सहयोग, उनका प्रसाद साथ था। वे जीवन की कडवी घूटें कुछ इस तरह पीती गई जैसे कभी शिव जी ने ससार के कल्याण के लिए गरल-हलाहल की बूटी पी थी। ऐसी माता स्वरूपरानी, तारीख़ १० वीं जनवरी सन् १९३८ के प्रातःकाल, ६६ वर्ष कीपरि-पक्व अवस्था मे प्रयागराज के तीर्थ तट पर महा-यात्रा करगई हैं। महात्माजी ने उनकी—उनके सारे जीवन और सारे परिवार की—सराहना करते हुए अद्‌भुत तरीक़े से लिखा है कि—"हम उनकी मृत्यु पर रोयें नहीं, पर खुश हों। भारत की माताएँ उनके छोडे हुए चरण-चिह्नों पर चलें और जवाहरलाल से पुत्ररत्न देश को

दे कर जीवन की यात्रा सफल करें।" अतएव हम भी क्यों रोयें—उनके चरणों में वन्दना करते हुए हम उनकी दिवंगत आत्मा के सुख और शान्ति के लिए परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं।

ग्यारहवां परिच्छेद !

कमला जी की जीवनसन्ध्या और परिशिष्ट ।

इसके बाद, सन १९३२ से लेकर सन १९३६ तक का काल जवाहरलाल जी की जीवन-कहानी का दुख भरा, कष्टमय और लम्बी लम्बी जेल यात्राओं वाला काल है जो कमला जी की न छुटने वाली बीमारी, मानसिक क्लेश और जीवन-संगिनी के विछोह की दर्द-भरी दास्तान से भरा पड़ा है। कलकत्ता-जेल, अलीपुर-जेल, बरेली-जेल, देहरादून-जेल, नैनी सेण्ट्रल-जेल, अल्मोड़ा-जेल प्रभृति जिन-जिन जेलों मे जवाहरलाल जी रहे उन सबकी दास्तान क़रीब क़रीब एक सी है। जेलख़ानों के रंग रवैये का हाल थोड़े में पीछे दिया जा चुका है। इस परिवर्तनशील संसार में तब्दीलियां होती रहती हैं, परन्तु जेल की अंधेरी दुनिया में कभी रोशनी नही होती। पर इस लम्बे काल के जेल-जीवन में जवाहरलाल जी ने खूब अध्ययन किया और खूब मनन किया है। पंडित जी ने इसी कारावास प्रवास में, अपने जीवन के संस्मरणों के रूप मे "अपनी कहानी"* लिखी है जो प्रत्येक भारतीय स्त्री-पुरुष के लिये पढ़ने और गुनने की सामग्री है।

* * *

---

*मेरी कहानी —लेखक जवाहरलाल नेहरू। प्रकाशक सस्ता साहित्य मंडल, पोस्ट बाक्स ७८ देहली। मूल्य ४)।

जवाहरलाल जी जब जेल ही मे थे तभी कमला जी बीमार पड़ गई थीं। यों तो उनका स्वास्थ्य सदा का दुर्बल था, पर बार बार के लम्बे-लम्बे प्रियतम-विछोहों ने उनकी ज्योति को समय से जल्द ही बुझा दिया। कमला जी की अवस्था जब खतरनाक हो गई तब सरकार ने जवाहरलाल जी को चद दिनों के लिए छोड़ दिया, जिसमें पी पी करके रटती हुई पपीही क्षण भर के लिए अपने सूखते कण्ठ को तरो ताजा कर ले। जवाहरलाल जी अपनी जीवनी मे लिखते हैं कि जिस घड़ी मैं घर की देहरी के अन्दर दाखिल हुआ--कमला का बुरा हाल था। मैंने देखा कि कमला की दुर्बल, सीक सी पतली देह अर्द्ध मूर्छित अवस्था में पड़ी हुई है। मुझे दर्द हुआ और चिन्ता होने लगी कि कमला अब मुझे छोडना चाहती है। १८-१९ साल के विवाहित जीवन का चित्र, सिनेमा के फ़िलम की तरह, मेरी आंखों के सामने आने-जाने लगा। विवाह के साल दो साल के अन्दर ही मार्शल ला, सत्याग्रह, असहयोग-आन्दोलन और देहातों का कार्यक्रम जारी हो गया था, जिससे सार्वजनिक कामो में मुझे ज़्यादा से ज़्यादा वक्त देना पड़ा। कमला ने, सच्ची साथिन की तरह, सदैव मेरे कामों मे हाथ बटाया। कितना मानसिक और शारीरिक कष्ट उसने मेरी खुशियों की खातिर सहा। धीरे धीरे वह बात, जो मेरी मुहब्बत के नाते कमला के दिल में उठी थी, देश प्रेम का रूप धारण कर राष्ट्र के दुख-दर्दों को समझने बूझने लगी और असहयोग-आन्दोलन में अग्रगामिक होकर, कमला कांग्रेस का कार्य करते-करते बखुशी जेल चली गई। फिर हम लोगों

की मुलाक़ातें महीनों न हो पातीं--वे लखनऊ की जेल में और मैं सैकड़ों कोस दूर बरेली की तनहाई की कोठरियों में। इसी तरह, शारीरिक नेह-नाता बढ़ता गया---हम दोनों की ख़्यालाती और अमली दुनिया एक होती गई और हम एक दूसरे की आत्मा में तनमन होते गये। मैंने वापस आने पर देखा कि कमला, १८ साल पहले की नव वधू के समान हीं एक पलग पर लेटी पडी है। चेहरे पर वही सलोनापन है—होठों में वही मीठी मुस्कान है पर मैं—मैंने जब अपने मुखड़े पर सामने के आइने के ज़रिये से नज़र डाली--मुझे लगा--मैं बेहद बदल गया हूँ। बाल पकने लगे हैं, चेहरे पर झुर्रियां पड़ने लगी हैं और आंखों के आसपास काली-काली रेखायें अपना अड्डा जमा चली हैं। गत चार सालों की लगातार पीडा और तकलीफ़ों ने अपने निशानात मेरे चेहरे पर छोड दिये हैं और मैं बुजुर्ग सा जँचने लगा हूँ। पिछले दो-तीन सालों में जब-जब मैं कमला के साथ किसी अपरिचित स्थान पर पहुंचा तो वहां के लोगों ने, बहुत करके, कमला को मेरी लडकी ही समझा है। आज वही कमला, एक कमसिन लडकी के समान लेटे-लेटे मेरी स्मृतियों को जगा रही थी। इंदिरा प्रियदर्शिनी- मेरी इकलौती कन्या जो कमला की छोटी बहिन के मानिन्द जचती थी—अपनी मां के घुटनों पर शीश दिये बैठी थी। पिछले १८ सालों में हम कै दिन साथ साथ रहे। अक्सर मैं रहा जेलों में और वे रहीं अस्पतालों या स्वास्थ्य-गृहों मे। हम दोनों की भेंट-मुलाक़ात कभी कभी एक लम्बे काल के बाद कारागार के सीकचेदार

फाटक के पास हो जाती और फिर कुछ क्षणों के बाद वही बिछुडने की बारी आ जाती। मैंने देखा कि कमला के दीपक की बत्ती जलते-जलते खत्म होने को आई है और जो स्नेह-धार कुछ दिन पहले इसे बुझने से बचा सकती है वह आज प्राणों का सञ्चार कर सकने में असमर्थ है। हम क्या जानते थे कि, जब हम दोनों एक दूसरे को पहचान कर, एक दूसरे पर भरोसा करने लगेंगे तब ये जुदाई के सदमे यकायक सर पर आ पड़ेंगे! अभी हम दोनो को साथ साथ देश की कितनी खिदमत करनी थी, पर नियति के कठोर नियम को मेट सकने की ताकत किसमें है? मेरे आने से कमला की हालत कुछ सुधरी, पर ग्यारहवें दिन फिर पुलिस की लारी आई और फिर उसमे मुझे बिठा कर नैनी-जेल ले गई। चलते वक्त मेरी बृद्धा मां की हिचकियां बंध गईं और कमला की हालत मेरी गैर-मौजूदगी मे फिर बिगड़ने लगी जो फिर अन्त तक सुधारे न सुधरी। सरकार वाले कहते थे कि, तुम राजनीति में न पडने का वादा करके बाहर जा सकते हो, गोया वे जवाहरलाल को परख रहे थे कि, ये किस धातु के बने हैं। भला समझने की बात है कि, जीवन के उस अन्तिम काल में जब कमला अस्ताचल की ओर जा रही हो, जवाहरलाल राजनीति में क्या खाक पडते? वे नेता है तो क्या हुआ, क्या वे हमारे तुम्हारे जैसे हाड़-मांस के पुतले नही है? उन्हे क्या अपनी पत्नी से प्रेम नही, पर सरकार वाले वक्त पडने पर अपनी हृदय-हीनता का परिचय देने से बाज नही आते। जवाहरलाल जी ने लिखा है कि मैं जब दूसरी बार कमला को देखने लेजाया

गया तब कमला ने धीमी आवाज़ से मेरे कान में फुसफुसा कर कहा था कि, "मेरी ख़ातिर तुम गवर्नमेण्ट को किसी तरह का वचन न देना--वह हमे तुम्हे शोभा नहीं देगा।" कमला जी के इस एक वाक्य से जवाहरलाल को कितना बल और कितना सुख मिला होगा। कमला जी फिर भुवाली भेजी गई। वहां भी मर्ज़ बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की गई। सरकार के औलिया लोगों ने यदि जवाहरलाल जी को छोड़ दिया होता, तो मुमकिन था कमला जी कुछ दिन और जी जातीं। पर, सरकार उन्हें महीने दूसरे महीने घण्टे-दो घण्टे के लिए मिलाई भर कर लेने को भेजती रही। और अन्त मे वे आख़िरी चिकित्सा के लिए जर्मनी ले जाई गई। जर्मनी नामक देश अपने देश से बहुत दूर--५००० मील की दूरी पर है। वे जहाज़ पर गई थीं--साथ मे एक डाक्टर था और एक उनकी अपनी लड़की। कमला जी की सास उन दिनों बम्बई के अस्पताल में बीमार पड़ी थीं। कमला जी की हालत जर्मनी में भी न सुधरी। ख़बर आई कि कमला जी डूब रही है, उनके जीवन का सूर्यास्त हो रहा है--उनके बचने की अब कोई उम्मीद नहीं है। ऐसी दर्दनाक स्थिति में जवाहरलाल जी ता० ४ सितम्बर को रिहा किये गये और एक सच्चे प्रेमी की तरह आशा-निराशा के बीच द्वन्द्व-युद्ध करते, हवाई जहाज़ से उड़ कर जर्मनी पहुंचे। राम-राम करके दोनों की मुलाक़ात हो सकी। चला चली की उस बेला में कमला जी की चितवन कितनी दर्द भरी रही होगी। अपने घर और अपने देश से कितनी दूर विदेशियों के बीच में, वे

अपनी दैहिक लीला सम्पर्ण कर रही थी। मानो कमला के प्राण अपने जवाहर में अटके थे जो दर्शन पा कर, जर्जरीभूत शरीर को परित्याग कर, 'अमर-ज्योति' में विलीयमान हो गये। उनकी मृत्युकी खबर क्या आई, देश में हाहाकार मच गया। "भारत की महा-राणी मर गई!"--लोगों की ज़बानों पर यही कलाम था। जवाहरलाल जी उनके पञ्चमहाभूत के शरीर को मुट्ठी भर राख और चन्द हड्डियों के रूप में स्वदेश वापस लाये थे, जिसे लाखों जन साथ जा कर गगा-यमुना के पवित्र संगम पर प्रवाह कर आये और जवाहरलाल अकेले रह गये--बिल्कुल अकेले। अब तो जवाहरलाल और कमला जी के दाम्पत्य-जीवन की प्रेम-भरी कहानी ही रह गई है जो हिन्दू दम्पतियों के लिए बहुत दिनों तक आदर्श और उदाहरण का काम देती रहेगी। तब से जवा-हरलाल और भी बेपरवाह हो गये हैं और देशवासियों की खातिर, जीवन के सूनेपन को भूल, आजादी की बशी बजाते हुए भारत की बस्ती-बस्ती मे घूम रहे हैं। वे--उसके बाद--दो बार कांग्रेस के सभापति बनाये जा चुके है--लखनऊ में सन् १९३५ में और फिर फैजपुर में सन् १९३६ मे। पण्डित जी ने अपनी शक्ति से देश में नई फ़िज़ॉ पैदा कर दी है और फ़िरके-दाराना जमातों के पैर उखाड दिये है। उनका जीवन चरित्र और उनके अनोखे काम तो फिर कभी विस्तृत रूप से लिखे जायँगे—भारत के आजाद होने पर इस कार्य को विद्वान इति-हासज्ञ ही पूरा कर सकेंगे--हम तो आज, टूटे-फूटे शब्दों में, पग पग पर अपने निकम्मेपन और अपनी अयोग्यता का आभास

पाते हुए, अपने महान् नेता के उतने ही संस्मरण लिख सके हैं जितने यदा-कदा उनके दर्शन पाने, उनकी बातें सुनने, उनके व्याख्यानों में शिरकत करने उनके जीवन की कहानी पढ़ने और उनके चरणों से बहुत दूर, उनके भावों को समझने की कोशिश मे ज़रा-ज़रा हासिल होते रहे हैं। जो कुछ हम समझ सके हैं—वह इतना हम ज़रूर समझ सके हैं कि, वे अपने लिए कुछ नहीं चाहते—इज़्ज़त, आबरू, ख़िताब, तमग़े और मानपत्रों के लफ़्फ़ाज़ी खर्रे—कुछ भी नहीं। वे चाहते है इन्क़लाब और केवल इन्क़लाब। वे भारत को महान् बनाना चाहते हैं। हमें मिट्टी से उठा कर सिंहासन पर बिठलाना चाहते हैं। काश, हम इस योग्य बन सकें। उनकी तमन्ना है कि, देश में कोई भूखा और नगा न रहे—मुल्क में सरसब्ज़ी आये और क़ौम के अन्दर पौरुष की बाढ़ आये। उन्हे बुज़दिली से चिढ़ है। गिरे हुए चरित्र, धँसी हुई आँखें और पिचके हुए गालों वाले नौजवानों से उन्हे नफ़रत है। वे देखना चाहते हैं लाल-लाल चेहरों वाले मुस्टण्डे और बलवान जवान। वे क्रान्ति की तैयारी में लगे है और चाहते हैं कि हम तुम सब भी क्रान्तिकारी का पेशा अख़्तयार करें। उनका काम अभी समाप्त नहीं हुआ है। रावी के पुनीत तट पर मुकम्मिल आज़ादी हासिल करने की शपथ दिलवाने वाला जवाहरलाल आज भी हमारी सदारत और रहनुमाई कर रहा है। सन १९३० की २६ वीं जनवरी को पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने के लिए हमने जो क़सम खाई थी, वह आज तक अधूरी पड़ी है। हमने क्षात्र धर्म ग्रहण किया है। हमने दुश्मन को पीठ न दिखलाने की सौगंध

खाई है। हमारे अन्दर युद्ध की मनोवृत्ति है, संघर्ष की जलती हुई भावना है। हम तब तक कैसे चैन ले सकते हैं जब तक वह प्रतिज्ञा जिसे हम बरसों से दोहराते आये हैं, पूरी नहीं हो जाती। प्रतिज्ञा का मूल्य जीवन देकर भी चुकाना पड़ता है और जब तक यह मौलिक बात गले तरे नहीं उतर जाती तब तक आज़ादी हमसे दूर ही दूर रहेगी। वर्षों से पूर्ण आज़ादी की जंग छिडी हुई है पर क्या कारण है कि स्वराज्य आज भी कोसों दूर है? इगलैंड की नाक की छाया के नीचे बसने वाला, आयरलैंड के समान एक छोटा सा देश, स्वाधीन हो जाता है और इंगलैंड से ५००० मील की दूरी पर का, पैंतीस करोड़ जन संख्या वाला, यह विशाल देश गुलाम का गुलाम बना रहता है। उनके पास यदि डी वेलरा सा नेता है तो हमारे पास भी गांधी और जवाहरलाल हैं। फिर क्या कारण है कि हम स्वतंत्र नहीं हो पाते? हम तो आज भी, पूर्ण स्वाधीनता की वह अपूर्व शपथ लेने के बाद भी, समझौते और सुलह की बातें करते रहते हैं गोया हम उस शपथ के प्रति अपनी ज़िम्मे-दारी और वफ़ादारी को महसूस ही नहीं करते। आज़ादी भी क्या दुकानदारी और मोल तोल की सामिग्री है? आज़ादी भी क्या टुकड़े टुकड़े करके मिलती है? या तो हम आज़ाद हैं या आज़ाद नहीं हैं—इसके बीच का कोई रास्ता हो ही नहीं सकता। वह आज़ादी, आज़ादी नहीं कही जा सकती जो पाबन्दियों के काँटेदार तारों से घिरी हुई हो, जो अंग्रेज़ों के विशेषाधिकार से ग्रस्त हो और

जिस पर ब्रिटिश पारलियामेण्ट का प्रतिबन्ध हो। हो सकता है कि वक्त आते ही हम फिर से लडेंगे, हो सकता है कि समय पड़ने पर हम फिर से सुलह करेंगे। इसी तरह दम लेते, मंज़िलें तै करते, हम एक दिन मंज़िले मक़सूद तक जा पहुंचेंगे। इस बीच में ब्रिटिश साम्राज्यवाद से कोई समझौता करके, औपनवेशिक स्वराज्य के नाम पर हम पूर्ण स्वराज्य के झण्डे को नही झुकायेंगे। आज हमारे इन्ही विचारों का नेतृत्व जवाहरलाल जी कर रहे हैं। वे ब्रिटिश साम्राज्य से सम्बन्ध तोड़े वग़ैर नही रहेंगे और इसके लिये हम भी प्रयत्नशील होकर तैयारियां शुरू कर दें। ज़वाहरलाल तब तक लडने वाले हैं जब तक हमारा जन्म सिद्ध अधिकार प्राप्त नही हो जाता, जब तक समा[illegible] का [illegible]षणकारी ढाचा नही बदल जाता, और जब तक दलि[illegible], पराधीना भारत माता के प्रांगण में नवजीवन-[illegible]नी शुद्ध हवा और स्वास्थ्य बर्धक सुनहली धूप का प्रकाश नहीं फैल जाता। यदि जवाहरलाल से हमे प्रेम है तो उनके पीछे पीछे हमें चलना ही होगा, यदि जननी जन्म भूमि को हमने सचमुच स्वर्गादपि गरीयसी मान रक्खा है तो जनता के आज़ादी के सिलसिले को नित्य प्रति बढ़ाने के लिये हमें अपना अपना बलिदान चढ़ाना ही होगा। हमें यह बरदाश्त नहीं कि ग़रीबों की गरदनो पर पुरानी पैनी छुरियां अब भी चलती रहे। हमारे अन्दर से क्रान्ति की वह लहर पैदा होगी जिसके प्रवाह में पड़ कर बड़ी बडी चट्टानें उखड़ जायंगी। क्रान्ति के इसी जीवन-सन्देश को सुनाने के लिये जवाहरलाल हमारे बीच में पधारे हैं।

वे हमारी भावी क्रान्ति के प्रतीक है, हमारी शक्ति के प्रतिनिधि हैं, हमारी आंधी के झोके हैं और हमारी लहरों के रोले हैं। हमने उनके सर पर राष्ट्र का सेहरा बांधा है और अब हमें यही ज़ेबा देता है कि सर पर कफ़न बांध कर, सारे भेद भावों को भूल-भाल कर, हम भी उनके कंधे से कंधा भिड़ा कर चलते चलें। बोलो —

भारत माता की जय !
महात्मा गांधी की जय !
जवाहरलाल नेहरू की जय !